सिक्ख-मुगल सम्बन्धों का ऐतिहासिक विश्लेषण
(1605–1716 तक)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच0 डी0 की
उपाधि हेतु प्रस्तुत

मौलिक शोध–प्रबन्ध

इतिहास

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
2001
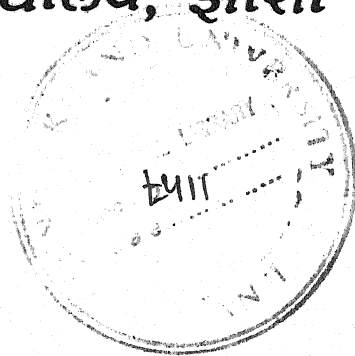
शोध निर्देशक
डॉ० मोहनलाल श्रीवास्तव
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
डी० वी० (पी० जी०) कालेज
उरई।

शोध कर्त्री
इन्द्रकला सिंह
द्वारा–रमेश चन्द्र गोस्वामी
लक्ष्मी मन्दिर, झाँसी रोड
रामनगर, उरई।

शोध पर्यवेक्षक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती इन्द्र कला सिंह** ने अपने प्रस्तुत शोध प्रबन्धक **"सिक्ख-मुगल-सम्बन्धों का ऐतिहासिक विश्लेषण" (1605 से 1716 तक)"** को मेरे पर्यवेक्षण में पूर्ण किया है । उनका यह शोध कार्य सर्वथा मौलिक तथा नवीन है और यह कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न किया गया है ।

इस कार्य के सम्पादन के लिए बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय की न्यूनतम अवधि की उपस्थिति को भी इन्होंने पूर्ण कर लिया है ।

पर्यवेक्षक-

S.M.L. Srivastava

दिनांक-9.11.2001

डॉ0 मोहनलाल श्रीवास्तव
अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
डी0वी0 (पी0जी0) कॉलिज, उरई ।

प्राक्कथन

इतिहास में सिक्ख धर्म का जन्म और विकास अपना उदाहरण आप ही है । मध्यकालीन भारत में सिक्खों एवं मुगलों में स्थापित परस्पर सम्बन्धों ने लगभग सम्पूर्ण भारत के ऐतिहासिक घटनाक्रम को प्रभावित किये रखा है । कई वर्षों तक निरन्तर स्थापित सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों का प्रमुख केन्द्र पंजाब था । पंजाब में ही मुगल साम्राज्य सबसे अधिक दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त किये हुए था और सिक्खों की मातृभूमि भी पंजाब ही थी । इसलिए सिक्खों एवं मुगलों के परस्पर सम्बन्धों को जानना अत्यन्त रोचकता का विषय है कि किस प्रकार मुगल साम्राज्य के उद्गम के साथ ही साथ सिक्ख धर्म भी आरम्भ होता है और किस प्रकार अन्तिम महान मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही दसवें तथा अन्तिम गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह की भी मृत्यु हो जाती है ।

सिक्ख–मुगल –सम्बन्धों की शुरूआत तो श्री गुरू नानकदेव और बाबर के भारत–आक्रमण के साथ ही हो जाती है, परन्तु इस शोधकार्य में उनके सम्बन्धों का अध्ययन 1605 ई0 से प्रारम्भ किया गया है । क्योंकि वास्तव में यहीं से सिक्ख–मुगल–संघर्ष शुरू होता है और सम्बन्ध बनते–बिगड़ते हैं । फिर भी 'विषय–प्रवेश' में सम्बन्धों की शुरूआत जानने के लिए उन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध विषय ही क्यों ? मुगलकालीन भारत, पंजाब के इतिहास और सिक्ख इतिहास पर गणमान्य विद्वानों के कई विद्वतापूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं । विभिन्न पुस्तकों में भी जहाँ–तहाँ कम या अधिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है । परन्तु इनमें 'सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों' पर प्रायः बहुत कम लिखा गया है, जबकि सम्पूर्ण मुगलकाल में यह सम्बन्ध किसी न किसी रूप में चलते रहे हैं । स्पष्ट रूप से 'सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध' शीर्षक के अन्तर्गत कोई भी ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया है । इसके अतिरिक्त इस विषय को लेकर जो सामग्री अप्रकाशित है और महालेखागार जैसे स्थानों पर सुरक्षित पड़ी है, उसको प्रकाश में लाने के लिए भी यह विषय चुना गया है ।

सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध विषय होने के कारण इस शोध प्रबन्ध में केवल उन

ऐतिहासिक महत्व के अवसरों का ही वर्णन किया गया है, जिनके अन्तर्गत सिक्ख एवं मुगल आपस में सम्बन्धित हैं और एक–दूसरे पर पूर्ण प्रभाव डालते हैं । इसके अतिरिक्त सिक्खों के धार्मिक कार्यो का भी, जहाँ वे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध से सम्बन्धित हैं, संक्षिप्त वर्णन किया गया है। सिक्ख मुगल–सम्बन्धों को स्पष्ट करने का भरसक प्रयास किया गया है ।

सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों का स्वरूप क्या था ? सिक्खों ने मुगल बादशाहों की नीति को कहाँ तक प्रभावित किये रखा ? शान्तिप्रिय सिक्खों को सन्त–सैनिक बनाने में मुगल बादशाह कहां तक उत्तरदायी थे ? इन सम्बन्धों का दोनों पक्षों पर कैसा प्रभाव पड़ा ? क्या मुगल बादशाह सिक्ख धर्म को मिटाने में सफल रहे ? और अन्त में मुगल साम्राज्य के पतन में सिक्ख कहाँ तक उत्तरदायी थे ? प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में इन सभी प्रश्नों का उत्तर मैंने पूरी ईमानदारी से दिया है ।

इस शोध कार्य की पूर्ति के लिए मैंने सभी सम्भव स्थानों, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली, भाषा विभाग पंजाब, स्टेट लाइब्रेरी पटियाला, सिक्ख रिफरेंस लाइब्रेरी और सिक्ख इतिहास रिसर्च बोर्ड अमृतसर आदि संस्थानों में उपलब्ध प्राथमिक एवं माध्यमिक स्रोतों के अध्ययन का पूरा प्रयास किया है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का निर्देशन **डॉ0 मोहन लाल श्रीवास्तव**, *अध्यक्ष इतिहास विभाग, डी0वी0 (पी0जी0) कॉलिज,* उरई द्वारा दिया गया है । आपके दूरदर्शितापूर्ण, विद्वतापूर्ण, कुशल एवं सदैव सुलभ निर्देशन के लिए शब्दों से अनुग्रह प्रकट करना तो मात्र औपचारिकता समझते हुए एतदर्थ मेरी मौन श्रद्धावनति ही है ।

मैं अपने पति **श्री रमेश कुमार सिंह** जी के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके कुशल उत्साहवर्द्धन ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है ।

अपने पिताजी **श्री पी0एन0 सिंह** (उपकृषि निदेशक) एवं माताजी श्रीमती **वैजन्ती सिंह** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम पुनीत कर्तव्य है, जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया और सदैव ही मेरा मनोवल बनाये रखा ।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों एवं लेखकों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके रचित ग्रन्थों से मुझे प्रस्तुत शोध में सहायता मिलती रही है । साथ ही उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर प्रोत्साहित करके मेरा हौंसला बढ़ाया है ।

अन्ततः मैं अपने टंकणकर्ता **श्री संजीव कुमार दीक्षित** एवं **श्री नीरज मेहरोत्रा** जेल रोड, मुरादाबाद की भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने कुशल नेतृत्व से इस शोध कार्य को बिना त्रुटिपूर्ण शुद्धता प्रदान की है । जिसके लिए मेरे पास शब्द नहीं है ।

इन्द्र कला सिंह

इन्द्र कला सिंह
द्वारा– रमेश चन्द्र गोस्वामी
लक्ष्मी मन्दिर, झाँसी रोड,
रामनगर, उरई ।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
दिनांकः 9–11–2001

—00—

विषय–सूची

—00—

प्रथम–अध्याय

।। विषय – प्रवेश ।।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

यदि वर्तमान में सामाजिक, सांस्कृतिक घटना क्रम के सार्वभौमिक स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात हाता है कि विभिन्न समुदाय, सम्प्रदाय व प्रजातियाँ अपने पृथक अस्तित्व, अस्मिता व सत्ता के लिए सतत् संघर्षशील रहे हैं । विशिष्ट रूप से अवलोकन करने पर ऐसा परिलक्षित होता है । कि विभिन्न प्रजातियों के परस्पर सम्बन्ध समकालीन राजनीति में तो अवश्य ही निर्णायक परिस्थितियों को निर्मित करने वाले रहे हैं, परन्तु कालान्तर में भी उन्होंने राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय परिस्थितियों को प्रभावित करके, शासकों, बुद्धिजीवियों एवं इतिहासकारों को पर्याप्त रूप से आकर्षित किये रखाहै । इस दृष्टि से मध्यकालीन भारत में मुगलों एवं सिक्खों के परस्पर सम्बन्धों ने न केवल पश्चिमी भारत के, अपितु अन्य भारतीय क्षेत्रों के ऐतिहासिक घटनाक्रम को भी प्रभावित किया है। यह अत्यन्त रोचकता का विषय है कि सिक्खों एवं मुगलों का उदय लगभग एक ही काल में हुआ । जहाँ मुगल प्रारम्भ से ही एक सैनिक एवं राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुए, वहाँ सिक्ख धर्म का स्वरूप प्रारम्भ में विशुद्ध धार्मिक था । मध्य एशिया में राजनीतिक अस्थिरता के कारण जब मुगल भारतवर्ष में आकर स्थापित हुए, तो दोनों प्रजातियों का सम्पर्क में आना निश्चित था । जहाँ मुगल विशुद्ध रूपसे इस्लाम का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, वहीं सिक्ख धर्म हिन्दुओं की ही एक परिष्कृत शाखा के रूप में भक्ति– आन्दोलन के फलस्वरूप प्रस्फुटित हुआ था । आने वाले वर्षो में मुगल–शासकों की इस्लामी नीति, धर्म–परिवर्तन की प्रक्रिया एवं धार्मिक अत्याचारों ने सम्भवतः भारतीयों के हृदय में एक प्रतिक्रिया एवं रोष को उत्पन्न कर दिया। इसके परिणामस्वरूप ही सिक्खधर्म भक्तिस्वरूप को त्याग कर एक सैन्य प्रजाति में ही परिवर्तित हो गया और इसके परिणामस्वरूप ही प्रारम्भ हुई– सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों की वह श्रृंखला, जिसने उत्तरोत्तर भारतीय राजनीति को उद्वेलित किये रखा । यहीं नहीं, इन सम्बन्धों ने सशक्त मुगल ढाँचेको ध्वस्त करने में भी निर्णायक भूमिका निभाई ।

अतः सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों की समीक्षा से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि दोनों प्रजातियों की उद्भव प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाये, ताकि उस पृष्ठभूमि को भी सामने रखा जाये जिन परिस्थितियों में, जिन कारणों के फलस्वरूप दोनों ही प्रजातियाँ उदित होकर एक–दूसरे के सम्पर्क में आयीं और फिर परिस्थितियों ने किस प्रकार उनके संघर्ष के ही

मार्ग को प्रशस्त किया । परन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस संघर्ष में मुगलों की स्थिति 'शासक' की थी, जबकि सिक्खधर्म की स्थिति 'शासित' की थी । इसलिए प्रारम्भ में उन भारतीय परिस्थितियों को भी अपने समक्ष रखना होगा, जिन्होंने सिक्खधर्म को जन्म देकर पहले एक धार्मिक जागृति तथा फिर राजनीतिक जागृति को निर्मित करने में निर्णायक भूमिका निभाई ।

'पंजाब' फारसी के दो शब्दों 'पंज' (पाँच) और 'आब' (पानी) से मिलकर बना है।[1] इसी कारण इन पाँच नदियों– झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलुज के प्रदेश को 'पंजाब' कहा जाता है। वैदिक काल में इसके लिए 'सप्त–सिन्धु'[2] शब्द का प्रयोग किया जाता था । तत्पश्चात् इसे 'ब्रह्मवर्त' के नाम से जाना जाने लगा । बौद्ध–ग्रन्थों में इसे 'उत्तर–पथ'[3] के रूप में सन्दर्भित किया गया है। सम्भवतः व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण ही इसे उत्तर–पथ कहा गया था । सन् 326 ई0पू0 में सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यूनानी इस प्रदेश को पान्त–पुर्सेमिया कहने लगे। ईरानियों के आगमन से शब्द 'सप्त–सिन्धु' का उच्चारण 'हफ्त–हिन्दू' हो गया । कहीं–कहीं इसका नाम 'टाकी'[4] भी दिया गया है । ह्यूनसांग[5] ने भी पंजाब को 'तकी' या 'टाकी' ही कहा ।

मुगल–काल में इसे 'सूबा लाहौर'[6] ही कहा जाता था । सिक्खमत के अन्तिम गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह ने इसे 'भद्र देश'[7] कहा है, क्योंकि प्राचीन काल में रावी का समीपवर्ती क्षेत्र 'भद्र' गणराज्य ही कहलाता था । भौगोलिक दृष्टि से यदि देखा जाये तो पंजाब का क्षेत्र विषमभुज है तथा इसका क्षेत्रफल पौने दो लाख वर्ग किलोमीटर है ।

इसका विस्तार $27^{0}39'$ उत्तरी अक्षांश रेखा से लेकर $35^{0}2'$ उत्तरी अक्षांश रेखा

1. स्टेन बैंक, दि पंजाब, पृ0–1
2. नरिंदरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0–1
3. जी0पी0 मालालासेकेटा, डिक्शनरी ऑव पाली प्रोपर नेम, भाग–1, लण्डन, 1960, पृ0– 363.
4. कनिंघम, दि एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑव इण्डिया, पृ0– 170
5. थामस वाटरज, ऑन ह्यूनसांग ट्रेवल्ज इन इण्डिया, भाग–2, पृ0–255
6. जयरट सरकार, आइन–ए–अकबरी, भाग–2, पृ0– 135
7. श्री गुरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक (हिन्दी अनुवाद) पृ0– 30, 45

तक तथा 69°35' पूर्वी देशान्तर रेखा से लेकर 78°35' पूर्वी देशान्तर रेखा तक है ।[8] पंजाब के उत्तर में हिमालय पर्वत है । इस पर्वत की पश्चिमी श्रृंखला पंजाब के उत्तर–पश्चिम में बिलोचिस्तान में सुलेमान पर्वत तक विस्तृत है एवं अफगानिस्तान व पंजाब के मध्य सीमा–निर्धारण करती है । इसके दक्षिण–पश्चिम में सिन्ध का क्षेत्र स्थित है और दक्षिण में राजस्थान का मरूस्थलीय प्रदेश है । इसके पूर्व में यमुना नदी इसकी सीमा का अन्तिम छोर है और उत्तर–पूर्व में शिवालिक की चोटियाँ स्थित हैं । इस क्षेत्र को उर्बरा बनाने में झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलुज आदि नदियों ने अत्यधिक योगदान दिया है । भौगोलिक रूप से पंजाब को पाँच क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जिन्हें 'दोआब' भी कहते हैं । दोआब का अर्थ– दो नदियों के मध्य के क्षेत्र से है। ये दोआब इस प्रकार हैं–

1– सिन्ध सागर दोआब'	:	सिन्ध और झेलम के मध्य ।
2– 'षज दोआब'	:	चिनाव और झेलम के मध्य
3– 'रचना दोआब'	:	रावी और झेलम के मध्य ।
4– 'खाटी दोआब'	:	रावी और व्यास के मध्य ।
5– 'बिस्त दोआब'	:	व्यास और सतलुत के मध्य ।[9]

समय–समय पर इन नदियों ने भारत में राज्यों एवं उनकी सरकारों के प्रभाव–क्षेत्र एवं सीमाओं का निर्धारण किया है । यही नहीं, जहाँ इन नदियों ने आक्रान्ताओं के आक्रमण में व्यवधान उत्पन्न किया है, वहाँ सुलेमान पर्वत की श्रृखंलाओं के विभिन्न दर्रों ने इन आक्रान्ताओं को पंजाब में प्रविष्ट होने के मार्ग सुलभ भी कराये हैं । इन दर्रों में मुख्य खैबर, बोलान, कर्रा, कुर्रम, टोषी, फोहाट और पंवारी आदि के दर्रे हैं, जो सदैव से मध्य एशिया एवं भारतवर्ष के मध्य सम्पर्क–साधन बने रहे हैं ।

अपनी इस भौगोलिक स्थिति के कारण ही पंजाब अनेक जातियों एवं सभ्यताओं का संगम–स्थल रहा है । पंजाब की भौगोलिक स्थिति ने सदैव इसके इतिहास को विशेष रूप से प्रभावित किया है । पंजाब अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण भारत का मुकुट और प्रवेश द्वार

8. एल0एम0जोशी एण्ड फौजा सिंह, हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग–1, पृ0– 25
9. नरिंदर पाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0– 1

बना रहा है । आक्रमणकारियों ने सदैव उत्तर की ओर से इस पर अधिकार करने के पश्चात् ही भारत के साम्राज्य को पाने की कोशिश की है ।[10] प्रागैतिहासिक काल की जातियों को छोड़कर भारत में समय–समय पर जो जातियाँ प्रविष्ट हुई हैं, अर्थात्– आर्य, यूनानी, ईरानी, शक, पार्थियन, हूण, अरब, तुर्क और मंगोल आदि सभी जातियों ने इन्हीं द्वारों से प्रवेश किया है । कुछ समय बाद इन जातिगत विषमताओं ने यहाँ के जन–जीवन का अंग बनकर, यहाँ की सभ्यता को ही समुन्नत किया है । इन्हीं के द्वारा विभिन्न विचार और दर्शन भी पंजाब में प्रविष्ट हुए, जिनके कारण पंजाब में नये–नये धार्मिक सुधारों एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ । इस कारण से पंजाब को भारत की सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन लाने वाला मुख्य कारक माना जा सकता है, क्योंकि इतिहास के निर्णायक युद्धों का केन्द्र सदैव ही पंजाब रहा है । 'सरहिन्द', 'कुरूक्षेत्र', 'थानेश्वर', 'तराबड़ी' और 'पानीपत' के युद्ध इसके प्रमाण हैं ।

पंजाब में विभिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं । इनकी भाषा और धर्म में भी विभिन्नताएँ विद्यमान हैं । यहाँ जाट, राजपूत, पठान, विलोच, गुज्जर, आर्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गक्खड़ और बनिया तथा अराई आदि विभिन्न प्रजातियाँ पायीं जाती हैं । इनमें से 'जाट' ही अधिक शक्तिशाली और बहुसंख्या में है । गुरू अर्जुनदेव के समय इन जाटों की बहुसंख्या ने ही सिक्खधर्म को अपनाया । सिक्खमत में जाटों की बहुलता के कारण ही यह मत धीरे–धीरे शान्तिमय भक्तों से विशुद्ध सैनिकों में बदल गया ।[11] विदेशी आक्रमणकारियों की जहाँ नस्लें भिन्न थीं , वहाँ इनकी भाषाएँ भी भिन्न थीं । पंजाब में विभिन्न जातियाँ अपने साथ अपनी–अपनी भाषाएँ लेकर आयीं और इन भाषाओं एवं यहाँ की स्थानीय भाषाओं के समन्वय से एक नई भाषा 'पंजाबी' का उद्भव हुआ ।[12]

प्रारम्भ में पंजाबी भाषा की कोई लिपि न थी । गुरू अंगद देव ने पंजाब में प्रचलित लिपियों– संस्कृत लिपि तथा टाकरी और शारदा लिपि आदि को सरल रूप में प्रस्तुत कर गुरूमुखी लिपि को सुधारने में योगदान दिया । इसके पश्चात् भाई गुरूदास ने इस वर्णमाला को पंजाबी लिपि का वर्तमान स्वरूप प्रदान किया ।[13]

---

10. लतीफ, हिस्ट्री ऑव द पंजाब, प्राक्कथन–2
11. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, भाग–2, पृ0–44
12. सुखवन्त सिंह, ए हिस्ट्री ऑव द सिक्खस, भाग–1, पृ0– 13
13. सारन सिंह, गुरू अंगददेव जी, पृ0– 7,8

पंजाब मुख्यतः एक कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। उन दिनों इसकी जनसंख्या का बहुसंख्यक भाग कृषि कार्य में लिप्त था। सदैव से पंजाब में आक्रान्ताओं के भय के कारण जन–जीवन कभी भी व्यवस्थित न हो सका । उद्योग–धन्धे स्थापित होते थे, किन्तु अस्थाई रूप से । इसी असुरक्षा की भावना के कारण उन दिनों सदैव चार्वाक–विचारधारा का बोलबाला रहा, अर्थात्– खाओं, पियो और मौज करो ।[14] इस कारण पंजाब का सामाजिक जीवन कठोर बनता गया । शासन– प्रबन्ध में आए दिन परिवर्तन होने पर भी प्रायः उसी तरह जीवन–यापन कर रहे थे, क्योंकि ग्राम प्रायः आत्मनिर्भर थे । मध्यकाल में पंजाब की राजधानी लाहौर थी । इसके अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र– दिल्ली, अम्बाला, अमृतसर, मुल्तान, रावलपिण्डी तथा पेशाबर में थे ।[15] इन क्षेत्रों से आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार होता था ।

....

---

14. पंजाबी कहावत– खा गया रंग ला गया, जोड़ गया सो रोड़ गया । या
    खाता पीता लाहे दा, रहिंदा अहमद शाहे दा ।।
15. एल0एम0 जोशी एण्ड फौजा सिंह, हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग–1, पृ0– 25

(2) सिक्खधर्म का उद्भव एवं अभिप्राय :

मध्यकाल में मुस्लिम आक्रमणकारियों के कारण पंजाब की स्थिति डाँवाडोल हो गयी । तैमूर के आक्रमण ने पंजाब का अधिक सर्वनाश किया । द्वितीय सैयद् शासक मुबारक शाह जब सन् 1421 ई0 में लाहौर आया, तो नगर उजड़ा हुआ था । सैयद शासक योग्य और शक्तिशाली तो था, लेकिन परिस्थितियाँ इतनी बिगड़ चुकी थीं कि वह कुछ भी करने में असफल रहा । मुबारकशाह के कत्ल के बाद उसके उत्तराधिकारी निकम्मे सिद्ध हुए और परिणामस्वरूप दिल्ली के आस–पास के अमीर स्वयं को राजभक्ति से मुक्त कर स्वतंत्रता के बहाने खोजने लगे ।[16]

सन् 1451 ई0 में दीपालपुर तथा लाहौर के गवर्नर बहलोल खाँ लोधी[17] ने प्रचलित अराजकता का लाभ उठाकर राजगद्दी पर अधिकार कर लिया । बहलोल बहुत नम्र स्वभाव का शासक था । अफगान अमीर, सुल्तान का केवल अपने मुखिया के रूप में सम्मान करते थे, न कि अपने स्वामी के रूप में ।[18] वह कभी गद्दी पर न बैठता था और न ही अपने अमीरों को हाथ जोड़कर दरबार में खड़ा रहने के लिए कहता था ।[19] उसकी यह नीति अपने भीतर विनाशकारी तत्त्व लिए हुए भी, जो जातीय ईर्ष्या में प्रगट हुई ।[20]

सन् 1488 ई0 में बहलोल लोधी का पुत्र सिकन्दर खाँ लोधी शासक हुआ । वह अपनी उदारता, सम्मान व नम्रता के लिए प्रसिद्ध था । लेकिन उसका न्याय सीमाओं के भीतर ही था।[21] गुरू नानक देव जी उसके शासनकाल के बारे में कहते हैं कि न्याय पंख लगाकर उड़ गया है ।[22] तत्पश्चात् सन् 1517 ई0 में इब्राहिम लोधी शासक हुआ । इससे न हिन्दू सन्तुष्ट थे, न

---

16. सुरजीत सिंह गांधी, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख गुरूज़, पृ0– 35
17. बहलोल लोधी, लोधी–वंश का संस्थापक था । गुरू नानक इसी के समय में जन्म थे ।
18. एरिस्कन, हिस्ट्री ऑव इण्डिया अण्डर बाबर एण्ड हुमायूँ, भाग–1, पृ0– 411
19. इलियट, तारीख–ए–दाउदी, हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरयन्स, भाग–4, पृ0– 436–37
20. अवध बिहारी पाण्डेय, द फर्स्ट अफगान एम्पायर इन इण्डिया, पृ0– 218
21. इलियट, तारीख–ए–दाऊदी, हिस्ट्री ऑव इण्डिया पेज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग–4, पृ0– 435–38
    आई0बी0 बेनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, भाग–1, पृ0–30
22. माझ की वार, पौड़ी 16 सलोक महल्ला–1, पृ0– 145
    'कलि काति राजे कसाई, धरम पंख करि उड़ रिआ ।

मुसलमान । वह अपने रिश्तेदारों और अमीरों में भी अप्रसिद्ध था, जिसके कारण उसकी शासन पर पकड़ ढीली होती गयी और विद्रोह होने लगे । दौलत खाँ लोधी पंजाब को स्वतंत्र करके स्वयं शासक बनना चाहता था और उधर केन्द्र में इब्राहिम का चाचा आलम खाँ स्वयं को शासक बनाना चाहता था । परिणामस्वरूप दोनों ने षडयंत्र रचना प्रारम्भ कर दिया ।

इन षडयंत्रों और आपसी फूट का परिणाम, जैसा कि भारत के इतिहास में सदैव ही होता आया है, एक बार पुनः विदेशी आक्रमण के रूप में हुआ । लोधी परिवार के सदस्यों और प्रसिद्ध अधिकारियों के निमंत्रण पर बाबर[23] ने कई बार भारत पर आक्रमण किया और अन्ततः सन् 1526 ई0 में इब्राहिम लोधी को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में पराजित करके स्वयं भारत का बादशाह बन बैठा।

इस समय पंजाब की स्थिति अराजकतापूर्ण थी । जीवन के सभी क्षेत्रों में पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे थे । मुस्लिम वर्ग शासक वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण स्वयं को श्रेष्ठ मानता था । शासित होने के कारण हिन्दुओं को शासक–वर्ग के शोषण का शिकार बनना पड़ता था । मुस्लिम वर्ग में सामन्त, उलेमा, कृषक तथा सैनिक वर्ग के लोग ही थे । सामन्त तथा उलेमा वर्ग विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग था । इनकी विश्वासपात्रता सदैव संदिग्ध रहती थी और जब कभी केन्द्रीय शक्ति शिथिल होती थी, तो यह लोग विद्रोह कर दिया करते थे ।

धार्मिक वर्ग में सयैद और उलेमा आदि थे । उलेमा वर्ग सर्वाधिक सम्मान का पात्र था। इन्हें इस्लाम का रक्षक माना जाता था और उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे भारत में मुस्लिमों के लिए विशेष श्रेष्ठता प्राप्त करने में योगदान करें ।[24] सैनिक तथा कृषक मध्य–वर्ग में आते थे । इनकी स्थिति उच्चवर्ग की तरह सम्पन्न तो नहीं थीं, परन्तु हिन्दुओं से उनकी स्थिति श्रेष्ठ थी । वे उच्च वर्ग की तरह ऐश्वर्य नहीं भोग सकते थे, लेकिन वेश्यालयों में जाकर सन्तुष्टि कर लेते थे ।[25] समाज की निम्नतम श्रेणी में दासों की गणना होती थी और इनका जीवन अमानवीय कष्टों से भरा होता था । अलाउद्दीन खिल्जी के समय दासों की संख्या 50,000 थी ।[26] दास युद्ध– कैदी होता था और उसका जीवन या मृत्यु पकड़ने वाले

23. बाबर भारत में मुगल–साम्राज्य का संस्थापक था ।
24. के0एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कंडीशन ऑव द पीपुल ऑव हिन्दुस्तान, पृ0– 70
25. जे0एस0 ग्रेवाल, गुरू नानक इन हिस्ट्री, पृ0– 38
26. आर0पी0 त्रिपाठी, सम आसपैक्ट्स ऑव मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ0– 220

पर निर्भर थी ।[27] हिन्दू समाज का गौण अंग समझे जाते थे । जनसंख्या की दृष्टि से वे मुस्लिमों से अधिक थे । हिन्दू–समाज प्राचीन काल से ही चार वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभाजित था । इस्लाम की बाढ़ से हिन्दू समाज ने स्वयं को सुरक्षित रखने की दृष्टि से अपने आपको छोटी–छोटी जातियों तथा उपजातियों में बांट लिया । इसका कारण यह था कि मुसलमान लोग अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इस देश में आये थे और वे हिन्दुओं में घुल–मिल जाने के लिए कदापि उद्धत न थे, वरन् वे अपना अलग अस्तित्व बनाये रखने के लिए दृढ़–संकल्प थे। ऐसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिन्दुओं ने अपनी जाति प्रथा के बन्धन को अत्यन्त कठोर बना दिया । उन्होंने मुसलमानों को मलेच्छ के नाम से पुकारा और उन्हें अस्पृश्य बतलाया । अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की सुरक्षा काउन्हें यही एक उपाय दिखाई दिया और इसी को उन्होंने अपना अवलम्ब बना लिया । सामाजिक रूप से मुस्लिम हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखते थे । हिन्दू अपनी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिए उन्हें बाहर नहीं निकलने देते थे।[28] परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, बाल–विवाह और कन्या–वध आदि कुरीतियों का प्रचलन हो गया ।

हिन्दू स्वतंत्र रूप से अपने धर्म का आचरण नहीं कर सकते थे । उन्हें हिन्दू होने के कारण मुस्लिम शासकों को कर के रूप में जजिया देना पड़ता था । इसके अतिरिक्त भय तथा लोभ से त्रस्त कर उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए भी प्रेरित किया जाता था ।[29]

मुस्लिम आक्रान्ताओं के पंजाब में प्रवेश के उपरान्त यहाँ के लोगों का जनजीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ । मुसलमानों का राज्य 'धर्म–राज्य' था और साम्राज्य की स्थापना के साथ–साथ इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना उनका दायित्व था । इसी कारण बहुसंख्यक गैर–मुसलमानों को धर्म–परिवर्तन के लिए बाध्य किया गया था । मुस्लिम सरकार का शिकंजा पंजाब में अधिक मजबूत था और इसी कारण पंजाब में धर्म–परिवर्तन की लहर पूरी शक्ति के साथ चलाई गयी।[30] निम्न श्रेणी के लोगों ने इस्लाम को स्वीकार करना शुरू कर

27. के0एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कंडीशन ऑव द पीपुल ऑव हिन्दुस्तान, पृ0– 70
28. पंजाबी कहावत–अन्दर बैठी लक्ख दी, बाहर गई कक्स दी ।
29. गोविन्द सिंह मानसुखानी, दि कुर्विटिसेंस ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 17
30. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, पृ0–43

दिया । मुसलमान मूर्ति—पूजक नहीं थे, लेकिन हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने के कारण वे भी पीर, फकीर और कब्र पूजने लग गये । हिन्दू मांस का प्रयोग नहीं करते थे, लेकिन मुसलमान मांसाहारी थे । मुसलमानों में शराब का आम रिवाज था । राजपूत अफीम खाते थे । मुगल बादशाह जहांगीर के समय में तम्बाकू का प्रयोग आम हो गया था । चौसर, शतरंज और ताश के खेल खेले जाते थे । अमीर लोग शिकार खेलते थे मदारी के तमाशे, जादू के खेल और नट के करतब भी आम प्रचलन में थे इसके अलावा मेले और त्योहार मनाने का भी चाव था । हिन्दूओं और मुसलमानों के मेले और त्यौहार अलग—अलग थे, लेकिन फिर भी दोनों हर जगह साथ—साथ देखे जाते थे ।[31]

लेकिन स्त्रियों की दशा में उत्तरोत्तर पतन दृष्टिगोचर हो रहा था । समाज में बाल—विवाह, कन्या—वध, सती—प्रथा, पर्दा—प्रथा एवं विधवा विवाह पर रोक आदि बुराईयां व्याप्त थीं । इनसे स्त्री—जाति समाज का गौण अंग हो गई थी ।

इस समय शिक्षा धर्म का दायित्व था, न कि राज्य का । मुख्यतः संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन करवाया जाता था । मुसलमान मदरसों में जाते थे, जबकि हिन्दू मन्दिरों की पाठशालाओं में शिक्षा ग्रहण करते थे । सरकारी नौकरी के लिए फारसी का ज्ञान अनिवार्य था ।[32]

मुस्लिम शासकों की धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं को उनकी असहिष्णुता की नीति का शिकार होना पड़ा । धर्म, आडम्बर और कुरीतियों का पर्यायवाची हो गया और पुरोहित वर्ग, काजी और ब्राह्मणों की वपौती बन गया। ईश्वर के प्रति सत्यता समाप्त हो चुकी थी। अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को प्रोत्साहन मिल रहा था। करोड़ों देवी—देवता उत्पन्न हो रहे थे। थोड़े ही समय में देवी—देवता एक—दूसरे के शत्रु हो गये थे और उनके पुजारी एक—दूसरे के विरोधी। [33]

हिन्दु धर्म का वास्तविक स्वरूप संस्कृत भाषा में होने के कारण तथा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता ने साधारण मनुष्य के लिए धर्म का आवरण असम्भव कर दिया था।

31. सारन सिंह, गुरू अंगद देव जी, पृ0— 18
32. सारन सिंह, गुरू अंगद देव जी, पृ0— 19
33. कनिंघम, सिक्खों का इतिहास, पृ0— 26

इसके विपरीत इस्लाम धर्म के सिद्धान्त स्पष्ट व सादे थे और साधारण मनुष्य भी उनको सरलतापूर्वक ग्रहण कर सकता था। भ्रातृत्व, एकेश्वरवाद तथा मूर्तिपूजा का खण्डन इसके प्रमुख आकर्षण थे। अपने वास्तविक रूप में इस्लाम , जैसा कि वह भारत में आया, बहुत पवित्र था। लेकिन धीरे–धीरे भारतीयों के सम्पर्क में आने के कारण वह ब्राह्मणवाद और हिन्दू देवताओं की ओर झुका।[34] इससे इस्लाम में भी उन अवगुणों का समावेश हो गया, जिनसे भारतीय धार्मिक व्यवस्था पहले से ही संत्रस्त थी।

अतः 15 वीं व 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में पंजाब की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा ही वे तथ्य थे, जिनसे पंजाब में भक्ति आन्दोलन और अन्ततः सिक्खमत की विचारधारा का उदभव हुआ। इस समय की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पंजाब में धर्म सुधार की अवश्यकता जान पड़ी और समाज के चिन्तनशील मस्तिष्क क्रियाशील हो उठे। श्री गुरूनानक देव जी इसी प्रतिक्रिया के काल में उदित हुए थे।[35] सिक्खमत के प्रणेता गुरूनानक देव जी का जन्म लाहौर[36] के समीप 15 अप्रैल, 1469 ई0[37] को तलवण्डी के स्थान पर हुआ। इनके पिता कल्याण चन्द क्षत्रिय वंशीय बेदी थे, जो गाँव के पटवारी थे।[38] इनकी माता

34. सारन सिंह, गुरू अंगद देव जी, पृ0– 18
35. गोविन्द सिंह मानसुखानी, दि कुर्विटिसेंस ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 19
36. कनिंघम, हिस्ट्री ऑव सिक्ख्स, पृ0– 35, टिप्पणी नं0–1, ऐसा कहा जाता है कि नानक का जन्म लाहौर के उत्तर में रावी नदी के किनारे तलवण्डी में हुआ था, जो भट्टी वंश के क्षत्रिय राए भोऐं के अधिकार में था । एक लेख के अनुसार उनके पिता तलवण्डी में रहते थे, परन्तु नानक का जन्म कानकद नामक स्थान पर हुआ था, जो लाहौर से 15 मील दक्षिण में है । वे अपने मामा के घर पैदा हुए थे, ननिहाल में पैदा हुए लड़के को नानक ओर लड़की को नानकी कहा जाता था ।
37. कृपया देखिए– परिशिष्ट– "क"
38. (क) ज्ञानी ज्ञान सिंह, तवारीख गुरू खालसा, भाग–1, पृ0– 39
    (ख) कनिंघम, हिस्ट्री ऑव सिक्ख्स, पृ0–35, टिप्पणी नं0–2 सियारूल मुतासरीन में लिखा गया है कि नानक के पिता गल्ले के व्यापारी थे । दबिस्तां के अनुसार नानक स्वयं गल्ले के व्यापारी थे । सिक्ख प्रदत्त विवरण इस विषय में खामोश है । परन्तु उनके अनुसार नानक की बड़ी बहन एक गल्ले के व्यापारी को ब्याही थीं और या तो व्यापार–कौशल सीखने के लिए या अपने बहनोई की सहायता करने के लिए नानक अपनी बहन के यहाँ रहते थे ।

तृप्ता एक धर्मिक प्रवृत्ति वाली महिला थीं। बालक नानक बचपन से ही धर्मिक प्रवृत्ति के थे। सात साल की आयु में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा शुरू हुई और इन्हें पण्डित गोपालदास के पास हिन्दी भाषा सीखने के लिए भेजा गया। पण्डित बृजलाल ने इनको संस्कृत का अध्ययन कराया।

बचपन से ही गुरू नानक अपनी आयु के बच्चों से असमान्य थे। वे यदा—कदा स्वयं ही ध्यानमग्न हो जाया करते थे। बाल्यावस्था की चंचलता और चपलता का उनमें अभाव था और इनमें कोई रिक्तता नहीं मिलती है। इनकी संसार के प्रति विरक्तता को देखकर इनके पिता बहुत चिन्तित हुए। उन्होने इन्हें अपने पैतृक व्यवसाय खेतीवाड़ी में लगाना चाहा, परन्तु नानक का मन यहाँ पर भी न रम सका। निराश होकर इनके पिता ने 18 वर्ष[39] की आयु में बटाले नगर के मूलचन्द की पुत्री बीबी सुलक्खणी से इनका विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त इनकों दो पुत्र रत्न श्रीचन्द और लख्मी चन्द प्राप्त हुए। इनकी बड़ी बहन नानकी के पति जैराम जो सुल्तानपुर में दौलत खाँ लोधी के मोदीखानें में नौकरी करते थे, की संस्तुति से गुरू नानक को मोदीखानें में अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। किन्तुं इससे भी विरक्तता एवं उदासीन में कोई परिवर्तन न आया। मोदीखानें में वे दो वर्ष 10 महीने की अवधि तक सेवारत रहे।[40] तत्पश्चात् उन्होनें संसार से विरक्त होकर विभिन्न दिशाओं में विस्तृत यात्राओं (उदासियों) का आयोजन किया।

गुरू नानक देव के शिष्य शनैः शनैः सिक्ख कहलाने लगे। संस्कृत शब्द 'शिष्य' का उच्चारण ही धीरे धीरे सिक्ख हो गया।[41] गुरू नानक ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए भारत तथा विदेशों में पाँच लम्बी यात्रांए की जिन्हें इतिहास में उदासिंयाँ कहा जाता है। ये

---

39. प्रो0 साहब सिंह, जीवन—वृतान्त गुरू नानक देव जी, पृ0— 23
40. प्रो0 साहब सिंह, जीवन—वृतान्त गुरू नानक देव जी, पृ0— 52
41. गण्डा सिंह, सिक्ख्स एण्ड सिक्खीज़्म, पृ0— 1,
    संस्कृत भाषा का शब्द 'शिष्य' धीरे—धीरे सिक्ख बन गया । परन्तुं सिक्ख शब्द एक विशिष्ट अर्थ भी रखता है और हमारा अभिप्राय इसी विशिष्ट अर्थ से है, अर्थात्— सिक्खधर्म ।

पाँच यात्राएँ इस प्रकार थीं :—

पहली यात्रा— यह यात्रा पूर्व की ओर की गई थी। इसमें आठ वर्ष का समय लगा। यह 1507 ई0 से शुरू होकर 1518 ई0 में खत्म हुई। इस यात्रा में गुरू नानक ने सैदपुर (पेमनाबाद), तलुम्बा, कुरूक्षेत्र, हरिद्वार, दिल्ली, पानीपत, बनारस, पटना, कामस्य (असम) तथा जगन्नाथपुरी आदि स्थानों का भ्रमण किया।

दूसरी यात्रा —यह यात्रा दक्षिण की ओर की गयी। यह सन् 1518 ई0 में खत्म हुई और इस यात्रा में गुरू नानकदेव जी ने रामेश्वरम और लंका का भी भ्रमण किया।

तीसरी यात्रा —यह यात्रा उत्तर की ओर की गयी। इसमें हिमालय की तराई, कश्मीर, कैलाशपर्वत, श्रीनगर,, जम्मू और सियालकोट का भ्रमण किया गया।

चौथी यात्रा — यह यात्रा पश्चिम की ओर की गयी। इसमें गुरू नानक ने मक्का मदीना, काबा, बगदाद ओर हसन अब्दाल (पंजा साहब) का भ्रमण किया।

पाँचवी और अन्तिम यात्रा— यह यात्रा केवल पंजाब में ही की गई थी। इसमें पाकपटटन, बटाला और ऐमनाबाद का भ्रमण किया गया। इसी यात्रा में ऐमनाबाद के स्थान पर बाबर और गुरू नानकदेव की आपस में मुलाकात हुई थी।[42]

गुरू नानक देव ने इन लम्बी यात्रओं के माध्यम से भारत की सुप्त जनता को जगाकर उसमें एक नवीन आशा का संचार किया। उन्होने अपनी शिक्षाओं द्वारा समाज में जागृति लाकर तत्कालीन समाज और धर्म पर यथासम्भव कुठाराघात किया।उनकी मुख्य शिक्षाएँ इस प्रकार थीं :—

निराकार अकाल पुरूष में विश्वास— सिक्ख अकाल पुरूष में विश्वास रखते हैं। गुरू नानक ने कहा कि परमात्मा एक है और वह सर्वव्यापक है। वह जन्म—मरणविहीन है,, उसका कोई रंग, रूप, रेख राग नहीं है । वह काल से ऊपर अथवा अकाल पुरूख हैं ।

---

42. प्रो0 साहब सिंह, जीवन—वृतान्त गुरू नानक देव जी, पृ0— 216

समानता— गुरू नानक ने कहा कि सभी मनुष्य आपस में भाई—भाई हैं। वे एक ही परमात्मा के बनाये हुए हैं । कोई भी ऊँचा अथवा नीचा नहीं है ।

विश्वास— गुरू नानक ने एक ही ईश्वर में दृढ विश्वास रखने को कहा ।

जाति—प्रथा का विरोध— गुरू नानक ने जाति—प्रथा का विरोध किया । उनका कहना था कि न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान है ।

मूर्ति—पूजा का विरोध— उन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन किया ।

नाम जपना— उन्होंने प्रभु का नाम जपने को कहा ।

प्रभु—भक्ति— गुरू नानक देव ने प्रभु—भक्ति पर बल दिया ।

श्री गुरू नानक देव जी से ही सिक्खमत का उद्‌भव हुआ और उनकी शिक्षाएं ही सिक्खमत का अभिप्राय या सार हैं । उनकी शिक्षाओं का तत्कालीन विश्रृंखलित समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और बहुत से हिन्दू और मुसलमान उनके शिष्य हो गये । लेकिन हिन्दू तथा मुसलमान दोनों वर्गों के पुजारी लोग उनके विरुद्ध हो गये। किन्तु इनका विरोध नवजात सिक्खमत पर घातक चोट न कर सका और परिणामस्वरूप सिक्खमत निरन्तर उन्नति के मार्ग पर बढ़ने लगा ।

....

(3) सिक्खधर्म—एक धार्मिक आन्दोलन :

सिक्खमत मौलिक रूप से एक धार्मिक आन्दोलन था । किन्तु अपने अस्तित्वको स्थायी एवं सुरक्षित बनाये रखने के लिए यह समकालीन राजनीति से अछूता न रह सका । धीरे—धीरे इसका स्वरूप राजनैतिक और कालान्तर में सैनिक हो गया ।

भक्ति का उद्‌गम संस्कृत शब्द 'भज' से हुआ, जिसका अर्थ—आराधना करना है । धार्मिक दृष्टि से भक्ति उस विशेष आकर्षण के रूप में प्रगट होती है, जो आराध्य में गुणों के ज्ञान के कारण उत्पन्न होती है । भारत में भक्ति आन्दोलन का आगमन दक्षिण में हुआ । तत्पश्चात् यह उत्तर में भी विस्तृत हुई।[43] इसी स्थानान्तरण के कारण पंजाब में भक्ति—आन्दोलन की प्रक्रिया के फलस्वरूप सिक्खमत का उद्‌भव हुआ ।

भक्ति—आन्दोलन सर्वप्रथम आडम्बरयुक्त परम्परागत धर्म के विरुद्ध धर्म—सुधार— आन्दोलन के रूप में प्रतिक्रियास्वरूप प्रस्तुत हुआ ।[44] वस्तुतः हिन्दू समाज की पतनोन्मुख अवस्था ने ही भक्ति—आन्दोलन की आवश्यकता का आभास कराया था ।

मुस्लिम वर्ग को हिन्दू समाज की इस अवस्था का लाभ पहुँचा और उनके शासक वर्ग से सम्बन्धित एवं विशेषाधिकार—युक्त होने के कारण हिन्दू उनके शोषण का शिकार बने । हिन्दू धर्म असुरक्षा की भावना के कारण अधिक संकीर्ण होता चला गया था और उसमें बाल—विवाह, कन्यावध, सती—प्रथा, पर्दा—प्रथा तथा विधवा—विवाह पर प्रतिबन्ध आदि अनेक विसंगतियाँ उभर आई थीं।

पुजारी वर्ग धार्मिक क्षेत्र में एकाधिकार—सम्पन्न था । काज़ी और पुरोहित आदि धर्म के सर्वेसर्वा थे, जिसके कारण साधारण मनुष्य के लिए धर्म का आचरण अत्यधिक कठिन था । इसके अतिरिक्त धार्मिक कर्मकाण्डों ने भी धर्म को अधिक परम्परागत एवं कठिन बना दिया था । इस तरह सामाजिक और धार्मिक अवस्था की पतनोन्मुखी स्थिति ने जन—साधारण के हृदय में असंतोष को जन्म दिया था और इस असंतोष से मुक्ति पाने के लिए ही भक्ति—आन्दोलन की उतपत्ति हुई ।

---

43. रामजी लाल सहायक, कबीर—दर्शन, पृ0— 349
44. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑव मेडिकल इण्डिया, पृ0— 57

सांस्कृतिक प्रगति अवरूद्ध हो गई थी, क्योंकि शिक्षा जो इसका माध्यम थी, उस समय धर्म का दायित्व समझी जाती थी, न कि राज्य का । इस कारण जन—मानस सांस्कृतिक जागृति के प्रति उदासीन था । उच्च—वर्ग ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था और समस्त कुरीतियों का शिकार था ।[45]

राजनैतिक स्थिति का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसमें स्थिरता व सुदृढ़ता का अभाव था जिसके कारण निरन्तर आक्रमण होते रहते थे । भारतीय जन—मानस और विशेषकर पंजाब की जनता में असुरक्षा की भावना घर कर गयी थी । उद्योग स्थापित होते थे, परन्तु अस्थायी रूप से आर्थिक रूप से लोग पिछड़े हुए थे । हिन्दुओं का राजनैतिक जीवन निम्न—स्तरीय था । उन्हें सरकारी उच्च—पद नहीं दिये जाते थे और ये केवल मुसलमानों के लिए ही सुरक्षित थे । इसके अतिरिक्त कई प्रकार के करों की भी अधिकता थी और विशेषकर हिन्दुओं पर लगाये गये धार्मिक कर जजिया ने उन्हें पीड़ित कर रखा था ।

इस प्रकार राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक असमानता, आर्थिक विपन्नता, धार्मिक असहिष्णुता और सांस्कृतिक प्रगति के अभाव ने सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता को स्पष्ट किया और इस आवश्यकता की पूर्ति ही भक्ति—आन्दोलन के रूप में हुई ।

भक्ति—आन्दोलन ने जन—सामान्य को अपनी ओर आकर्षित किया, क्योंकि उसका अस्तित्व ही जन—साधारण के लिए था और इसके सिद्धान्त व उद्देश्य साधारण, स्पष्ट तथा ग्रहण करने योग्य थे । भक्ति—आन्दोलन की विशेषता यह थी कि यह एकेश्वरवाद में विश्वास, गुरू की सेवा, जाति—भेद का न होना, आत्मा की अमरता, मूर्ति पूजा का खण्डन आदि का प्रचार करता था । ये सभी विशेषतायें वैदिक काल में विद्यमान थीं, लेकिन वे स्थायी न रह सकीं थीं क्योंकि धीरे—धीरे ब्राह्मणों की सांसारिक इच्छाएँ बढ़ने लगीं थीं तथा जाति—प्रथा तथा छुआछूत आदि कुरीतियाँ अस्तित्व में आ गयीं । इनके निवारणार्थ बौद्धमत और जैन मत जैसे धार्मिक सुधार—आन्दोलनों का उदय हुआ । बौद्धधर्म अपने महासुख को स्थायी न रख सका और थोड़ी अवधि में ही

45. जे0एस0 अग्रवाल, गुरू नानक इन हिस्ट्री, पृ0— 38

एक अन्य सुधार—आन्दोलन की आवश्यकता पड़ी । 8वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक ब्राह्मणवाद का बोलवाला रहा और उसने बौद्धमत को भारत से विलुप्त कर दिया । ब्राहमणों की इस सम्प्रभुता को 13वीं सदी में इस्लाम ने चुनौती दी । इस चुनौती के कारण आत्मरक्षा की भावना से भारत में दक्षिणमें भक्ति—आन्दोलन शुरू हुआ, जहाँ इसने बौद्धमत को अन्तिम चोट पहुँचाई ।[46]

इस्लाम का प्रभाव जैसे—जैसे उत्तर भारत में स्थापित होने लगा, प्रतिक्रियास्वरूप भक्ति—आन्दोलन भी अपने पैर इस क्षेत्र में जमाने लगा । उत्तर भारत में भक्ति—आन्दोलन के प्रमुख प्रचारक रामानन्द थे । उन्होंने उत्तर भारत और दक्षिण भारत के भक्ति—आन्दोलनों का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया ।[47] उनके कार्य को कबीर ने आगे बढ़ाया । कबीर के कारण ही भक्ति—आन्दोलन जन—साधारण तक जा पहुँचा । वे हिन्दु—मुस्लिम—एकता के प्रबल समर्थक थे । कबीर के दर्शन से गुरू नानक काफी प्रभावित थे और उन्होंनें पंजाब में अपनी शिक्षाओं का प्रचार करते हुए अक्सर कबीर के दोहों को उद्घृत किया है[48] और ये दोहे सिक्खों के पवित्र ग्रन्थ में भी दर्ज हैं ।

पंजाब में भक्ति आन्दोलन के प्रणेता गुरू नानक थे । उनके परलोक गमन के पश्चात् आने वाले नौ गुरूओं द्वारा इस आन्दोलन का प्रचार होता रहा । पंजाब में भक्ति आन्दोलन का परिष्कृत रूप सिक्खमत के रूप में प्रयुक्त हुआ । यद्यपि गुरू नानक भक्ति—आन्दोलन के व्यक्तित्वों में से ही एक थे, तथापि उनका अपना पृथक अस्तित्व था ।[49]

गुरू नाक देव से पूर्व सभी धर्मोपदेशक जीवन की निरर्थकता से प्रभावित थे और उन सभी ने जातीय उच्चता व निम्नता को विचार योग्य भी न समझा । संक्षेप में वे सब पुरोहितवाद, मूर्तिपूजा और बहु—देववाद से छुटकारा पाना चाहते थे और यही कारण है कि आज

46. बार्थ, रिलिजन ऑव इण्डिया, फैक्ट एन्थ्रोपोलोजी बुलिटिन, भाग—3, पृ0— 1
47. ताराचन्द, इन्फ्लूयन्स ऑव इस्लाम ऑन द इण्डियन कल्चर, पृ0— 143
48. तेजा सिंह एण्ड गण्डा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव द सिक्ख्स, भाग—1, पृ.0— 31
49. बलवन्त सिंह आनन्द, गुरू नानक— रिलिजन एण्ड एथिक्स, पृ0— 55

भी उनके समुदाय ज्यों के त्यों पाये जाते हैं ।[50] सम्भवतः प्रकृति गुरू नानक को हो यह अवसर देना चाहती थी कि वे सुधार के सर्वोत्तम मार्ग का ही अवलम्बन करें ।[51] गुरू नानक का ही प्रभाव था कि कालान्तर में गुरू गोविन्द सिंह ने सिक्खों को तलवार धारण कराके इस जाति को एक सैन्य प्रजाति एवम् राष्ट्र के रूप में ही बदल दिया ।[52] गुरू नानक देव ने जीवन की श्रेष्ठता का प्रचार किया और मध्यम मार्ग अपनाया ।

भक्ति–आन्दोलन से गुरू नानक देव के मार्ग को भिन्न करने वाली विशेषतायें अद्भुत थीं । उनकी दृष्टि में ईश्वर की आराधना गृहस्थ जीवन में रखते हुए भी हो सकती थी। साधु और सन्यासी जीवन से पलायनवादी दृष्टिकोण अपनाऐ हुए थे । अतः उनका सिक्खमत में प्रवेश वर्जित था । ईश्वर की प्राप्ति का साधन गुरू के प्रति श्रद्धा है । अतः उन्होंने स्थायी गुरूपद की संस्था कायम की । उन्होंने संस्कृत के ज्ञान, देवी–देवताओं और पौराणिक कथाओं का भी खण्डन किया । सिक्खों का ईश्वर पूर्व–भक्तों के ईश्वर से भिन्न था । यह निराकार था । इस का कोई रूप, रंग और आकार नहीं था । यह जन्म–मरण–विहीन था । यह काल से भी ऊपर अकाल पुरूख था। इस प्रकार निराकार ईश्वर के प्रति गृहस्थ जीवन में रहते हुए भक्ति की भावना का सन्देश गुरू नानक ने अपने शिष्यों को दिया । यही सिक्खमत का आगे चलकर आधार बना ।

इन्हीं विशेषताओं के कारण पंजाब में भक्ति–आन्दोलन का विशेष स्वरूप बन गया। अपनी इन अद्भुत विशेषताओं के कारण यह निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहा और हिन्दू धर्म में विलीन होने से बच गया । पुरातन कुरीतियों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

जहाँ भक्ति–आन्दोलन भारत के दूसरे भागों में खूब जोर–शोर से चलकर कुछ देर बाद गतिहीन हो गया और छोटे–छोटे अगणित अस्पष्ट परम्परावादी वर्गों में विभाजित हो गया, वहाँ पंजाब में यह आन्दोलन सिक्खमत के रूप में उच्चता के शिख़र पर पहुँच गया और

50. कनिंघम, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख़्स, पृ0— 29
51. कनिंघम, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख़्स, पृ0— 34
52. तेजा सिंह, ग्रोथ ऑव रिसपान्सीबिलिटी इन सिक्खीज़्म, पृ0— 3

कालान्तर में अपने आप में एक विशिष्ट राष्ट्रीय और धार्मिक चेतना का स्वरूप धारण कर गया।[53]

अपनी इन्हीं अद्‌भुत विशेषताओं के कारण भक्ति आन्दोलन का 'सिक्खमत' पक्ष एक स्थायी स्वरूप बना और दीर्घकाल तक पंजाब को प्रभावित करता रहा । इसने पंजाब के समाज को स्थायी आधार दिया ।

....

53. आई०बी० बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, भाग—1, पृ०—1

कालान्तर में अपने आप में एक विशिष्ट राष्ट्रीय और धार्मिक चेतना का स्वरूप धारण कर गया।[53]

अपनी इन्हीं अद्भुत विशेषताओं के कारण भक्ति आन्दोलन का 'सिक्खमत' पक्ष एक स्थायी स्वरूप बना और दीर्घकाल तक पंजाब को प्रभावित करता रहा । इसने पंजाब के समाज को स्थायी आधार दिया ।

....

53. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, भाग–1, पृ0–1

(4) मुगल बादशाहों की सिक्खों के प्रति नीति :

श्री गुरूनानक के समकालीन मुगल बादशाह जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म 14 फरवरी सन् 1483 को[54], तदनुसार मुहर्रम 6 हिजरी सन् 888 दिन शुक्रवार को तुर्किस्तान के एक छोटे से राज्य फरगना में हुआ था । बाबर के पिता उमरशेख मिर्जा फरगना के शासक थे । बाबर की माता का नाम कुतलुग निगार बेगम था । वह मध्य एशिया के दो महान् योद्धाओं– तुर्की शासक तेमूरलुंग तथा मंगोल नेता चंगेज खाँ का वंशज था । अपने पिता की तरफ से वह तैमूर का पांचवाँ वंशज था और माता की तरफ से चंगेजखाँ का चौदहवाँ वंशज था ।[55] यद्यपि वह तुर्क जाति के चुगताई वंश से सम्बन्ध रखता था, लेकिन इतिहास में उसे 'मुगल' के नाम से जाना जाता है। तैमूर के वंश में वही पहला व्यक्ति था, जिसे मुगल कहते हैं । 8 जून 1494 ई0 को उसके पिता की अचानक मृत्यु हो गयी । इस पर बाबर को अपने पिता का सिंहासन छोटी उम्र में ही सम्भालना पड़ा, जबकि उस समय वह केवल 11 वर्ष 4 मास का था ।[56] उस समय फरगना का राज्य चारों ओर से संकट से घिरा पड़ा था ।

अचानक घटित घटनाएं एवं समय के अनोखे खेल ही इतिहास के मार्गो पर मोड़ बनाते हैं और मनुष्य के मन–मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर उसे ऐसे मार्गो का राही बना देते हैं कि राज्यशाही भी मिल जाती है, तलवारों की गूंज नशे का काम करती है और मनुष्य मरने–मारने को पागल हो उठता है । ऐसी ही एक घटना का सामना बाबर को उस समय करना पड़ा जब वह बड़ी कठिनाईयों में था और पराजय के बाद पराजय का मुँह प्रायः देखकर निराश होकर इधर–उधर मारा–मारा फिर रहा था ।

ऐसे में एक बुढ़िया से, जो कि उस समय 111 वर्ष की थी, बाबर का सम्पर्क हुआ। उस बुढ़िया ने बाबर को उसके पूर्वज अमीर तैमूर की भारत–विजय की कहानियाँ सुनायीं । अतः बाबर भी उन्हीं रास्तों का राही बनने को आतुर हो उठा, जिन पर कभी तैमूर चला था ।

बाबर चाहे इधर–उधर छोटे–छोटे साम्राज्य विजय करता रहा, परन्तु भारत–

---

54. रशब्रुक विलियम्ज, ऐन एम्पायर बिल्डर्स ऑव द सिक्सटींथ सेंचुरी, पृ0–21
55. वही, पृ0– 22
56. के0सी0 जेना, बाबरनामा, पृ0– 41

विजय का विचार उसे हर समय परेशान करता रहा । इसका वर्णन बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुज्क–ए–बाबरी' में किया है । यह लिखता है– 910 हिजरी (1504–05) से जब मैंने काबुल विजय किया था, तब से मुझे हिन्दुस्तान–विजय करने की निरन्तर आकांक्षा रही है । किन्तु अभी तो वेगों के परामर्श की शिथिलता और कभी छोटे एवं बड़े भाईयों के साथ न देने के कारण हिन्दुस्तान पर आक्रमण सम्भव न हो सका और यह देश विजय न हो सका । अन्त में इस प्रकार की कोई रूकावट न रह गयी। कोई बड़ा अथवा छोटा इसके विरोध में कोई शब्द कहने वाला न रहा । 925 हिजरी (1519) में हमने सेना सहित प्रस्थान किया और बाजौर पर धावा करके उसे दो–तीन घड़ी में विजय कर लिया । वहाँ के लोगों का संहार करके हम भीरा पहुँचे । भीरा को नष्ट–भ्रष्ट न कराया गया । उन पर माल–ए–अमान लगा दिया गया और उनसे 4 लाख शाहरूखी नगद एवं सम्पत्ति के रूप में वसूल की गई । इस धन को सेना एवं अन्य सहायक दलों में बांटकर हम काबुल लौट आये ।[57]

इस समय से लेकर आज तक हम हिन्दुस्तान विजय करने का घोर प्रयत्न करते रहे और पांच बार आक्रमण किया । पांचवीं बार अल्लाह–ताला ने अपनी दया एवं कृपा से सुल्तान इब्राहीम सरीखे शत्रु को पराजित कर दिया और हिन्दुस्तान सरीखा देश विजय हो गया तथा हमारे अधिकार में आ गया ।[58] युद्ध क्षेत्र में इब्राहीम के मारे जाने के साथ ही न केवल पंजाब बल्कि समस्त भारत के भाग्य का निर्णय हो गया । पठानों का राज्य खत्म होकर मुगलों का राज्य आरम्भ हुआ ।

उस समय जबकि बाबर भारत पर आक्रमण कर रहा था और अन्त में उस पर अधिकार कर लिया, श्री गुरू नानक देव जी अपनी शिक्षाओं के प्रचार के लिए सारे देश में घूम रहे थे । उन्होंने अपनी पांचवीं उदासी पंजाब में ही रखी । उस समय गुरू नानक सैदपुर (ऐमनाबाद) में थे, जब बाबर पंजाब की तरफ बढ़ रहा था । गुरू नानक देव ने सैदपुर के लोगों को बाबर के आक्रमण की पहले से ही चेतावनी दे दी थी, लेकिन उन्होंने उस पर ध्यान ही न दिया था । अतः मुगल आक्रमण के समय से लोग सरलता से गाजर–मूली की तरह काट दिये गये । गूरू नानक

57. एस0ए0ए0 रिजवी, मुगलकालीन भारत–बाबर, पृ0– 162
58. ए0एस0 बिवरीज, बाबरनामा, भाग–1, पृ0– 478

देव ने सैदपुर वासियों को चेतावनी देते हुए भविष्य में होने वाली भयंकर घटना के प्रति सचेत किया।[59]

सैदपुर के पश्चात् बाबर तीव्र गति से बढ़ता हुआ आगे निकल गया और गुरू नानक सैदपुर वालों की हालत देखकर विचलित हो दुखी हृदय से भगवान से शिकायत करने लगे–

खुरासान ससमाना किया, हिन्दुस्तान डराईया ।
आपे दोष न देई करता, जमकर मुगल चढ़ाईया ।
ऐती मार पई कुरलाने, सें की दर्द न आइया ।[60]

अन्य लोगों के साथ गुरू नानक और मरदाना भी मुगलों द्वारा पकड़े गये और उनको भी चक्की पीसने पर लगा दिया गया । कहा जाता है कि कारागार के मुगल अधिकारी मीर खान ने गुरू नानक की विद्वता को पहचान लिया और बाबर को सूचना दी कि गुरू नानक एक फकीर हैं औरउन्हें छोड़ देना चाहिए । बाबर स्वयं चलकर गुरूजी के पास मिलने आया और उनसे वार्तालाप किया । उसने गुरूजी को मुक्त करने की आज्ञा दी, परन्तु गुरू नानक ने तब तक रिहा होने से इन्कार कर दिया जब तक कि बाकी कैदियों को भी मुक्त न किया जाये । तब बाबर ने सभी कैदियों को छोड़ दिया और कहा– यदि मैं जानता कि इस नगर में इतने महान् लोग हैं, तो मैं इसे कभी बर्बाद न करता ।[61] यह सिक्खों व मुगलों का प्रथम सम्पर्क था और यहीं से सिक्खों और मुगलों के सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते हैं ।

मुगल बादशाह बाबर ने भारत पर विजय प्राप्त की और साथ में विनाश को प्रोत्साहन दिया, तो गुरू नानक ने उसका विरोध किया और शान्ति का सन्देश दिया। इसलिए दोनों में मतभेद होना अनिवार्य था । इस तरह सिक्खों के प्रथम गुरू का मुगल बादशाह के साथ

59 आदि ग्रन्थ– सिलंग महल्ला 1, पृ0– 722—
जैसी में आवे खसम की बाजी, तेसड़ा कहीं म्यान वे लालो ।
पाप की जंग ले कायल हूँ धाइया, जोरी भगे दान वे लालो ।
खून के सोहले गावे नानक, रत का धुंगु पाई वे लालो ।

60. आदि ग्रन्थ– आसा महल्ला । पृ0– 360

61. आदि ग्रन्थ– बाबर वाणी ।

कोई मित्रतापूर्ण सम्पर्क नहीं हुआ । गुरू नानक का उद्देश्य धार्मिक था, न कि राजनैतिक । इसलिए इस प्रथम भेंट के पश्चात् बाबर तो आग और खून से खेल खेलता हुआ अपने साम्राज्य की स्थापना में लग गया और गुरू नानक अपने धर्म–प्रचार में लग गये । इसके पश्चात् उनका एक–दूसरे से कोई सम्पर्क या संघर्ष नहीं हुआ ।

धार्मिक कुरीतियों के कारण भक्ति–आन्दोलन की शुरूआत हुई, जिसके फलस्वरूप गुरू नानक सामने आये । उधर राजनीतिक कुरीतियों तथा आपसी फूट के कारण उत्पन्न भारतीय राजनीतिक अशान्ति ने बाबर का पथ प्रशस्त किया । बाबर, जो कि भारत–विजय के लिए उत्सुक था, को निमंत्रण पाकर एक उत्तम बहाना मिल गया । भारत में गुरू नानक के उदय के साथ ही बाबर इस देश में आया । गुरू नानक ने सिक्खमत की स्थापना की और बाबर ने भारत को विजय करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की । इस प्रकार दोनों ही संस्थापक थे — एक धर्म का, दूसरा राज्य का। दोनों ही समकालीन थे और दोनों ही नेता थे, एक धार्मिक, दूसरा राजनैतिक । दोनों ने लोगों को आकर्षित किया– एक ने प्रभु की भक्ति से, दूसरे ने बल और शक्ति से। अन्तर या तो इतना कि एक हिन्दू था, तो दूसरा मुस्लिम । एक का लोगों ने प्रसन्न होकर स्वागत किया और वह श्रद्धा का पात्र बन गया, जबकि दूसरे का लोगों ने शक्ति के भय से स्वागत किया और वह सम्राट बन गया ।

गुरू नानक देव और बाबर अर्थात् सिक्खों और मुगलों के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि तो बहुत पहले से ही शुरू हो जाती है, जब गुरू नानक यहाँ ईश्वर–भक्ति में लीन थे और अपने मत के प्रचार का विचार कर रहे थे और उधर बाबर भारत–विजय के स्वप्न देख रहा था ।

दोनों वंशों के प्रथम नेताओं से शुरू हुए ये सम्बन्ध उनके उत्तराधिकारियों में भी पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलते रहे । अन्तर इतना था कि प्रत्येक काल व समय में सम्बन्धों का स्वरूप बदलता गया और आश्चर्यजनक बात यह है कि अन्तिम सिक्ख गुरु श्री गुरू गोविन्द सिंह की मृत्यु[62] के एक साल पहले ही मुगल साम्राज्य के अन्तिम शक्तिशाली बादशाह औरंगजेब की भी

62. श्री गुरू गोविन्द सिंह की मृत्यु 1708 ई0 में हुई थी ।

मृत्यु[63] हो गयी । औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत तथा विशेषकर पंजाब में मुगल–शक्ति कमजोर होती गई, जबकि सिक्खों की शक्ति लगातार जोर पकड़ती गई और मजबूत होती गई।

26 दिसम्बर सन् 1530 ई0[64] को बाबर की मृत्यु होने पर उसका पुत्र नसीरूदीन हुमायूँ[65] बादशाह बना । श्री गुरू नानक अपने धर्म प्रचार में लगे रहे और बादशाह की तरफ से उसे कोई कठिनाई नहीं आई । इसके दो कारण थे– एक तो यह आन्दोलन धार्मिक था, दूसरे स्वयं हुमायूँ कठिनाईयों में फंसा हुआ था ।

श्री गुरू नानक ने अपने अन्तिम दिन करतारपुर में व्यतीत किये । उन्होंने लोगों को जिस दशा में पाया था, उससे कहीं अच्छी हालत में छोड़ा ।[66] वे 22 दिसम्बर 1539 ई0 को ज्योति–ज्योत समाये ।[67] गुरू नानक देव जी चाहते थे कि उनका कार्य निरन्तर चलता रहे ।[68] इसलिए उन्होंने भाई लहना को गुरू अंगद के नाम से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया । गुरू अंगद का गुरू गद्दी के लिए नियुक्त किया जाना सिक्ख इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है ।[69]

श्री गुरू अंगद देव जी का जन्म 31 मार्च सन् 1504 ई0 को फेरू मल के यहाँ गांव भत्ते की सरां, जिला फिरोजपुर में हुआ था ।[70] इनके पिता एक दुकानदार थे । सिक्खों और मुगलों की अब दूसरी पीढ़ी चल रही थी । गुरू जी शान्तिपूर्वक अपना धर्म सम्बन्धी कार्य करते रहे। इधर हुमायूँ को अपना साम्राज्य बनाये रखने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा ।

गुरू अंगद देव और हूमायूँ को अपना–अपना कार्य आगे बढ़ाना था । गुरू जी धर्म–प्रचार का कार्य शान्तिपूर्वक करते रहे । उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि विभिन्न

63. औरंगजेब की मृत्यु 1707 ई0 में हुई थी ।
64. माइकल प्राडिम, द बिल्डर्ज ऑव मुगल एम्पायर, पृ0– 75
65. विलियम एरस्किन, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव इण्डिया अंडर हुमायूँ, पृ0– 1
    (हुमायूँ का जन्म 6 मार्च 1508 ई0 को काबुल में हुआ) ।
66. गोकुलचन्द नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 27
67. तेजा सिंह एण्ड गण्डा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री आव दा सिक्खीज, भाग–1, पृ0– 17
68. गोकुलचन्द नारंग ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म पृ0– 27
69. इन्द्रभूषण बेनर्जी, खालसे दी उत्पत्ति (पंजाबी), पृ0– 112
70. नरिंदरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0– 17

भाषाओं से 35 शब्द चुनकर एक पृथक लिपि गुरूमुखी का प्रवर्तन किया और इसी लिपि में गुरू नानक की जीवनी लिखवाई । यह जन—साधारण की लोकप्रिय भाषा बन गई और इससे ब्राह्मणों की संस्कृत को चोट पहुँची । लंगर—प्रथा गुरु नानक ने ही प्रारम्भ कर दी थी, गुरू अंगद देव ने इसका विस्तार किया ।[71] यह संस्था प्रचार—कार्यो में काफी सहायक सिद्ध हुई । गुरू अंगद ने गुरू नानक के भजनों और उपदेशों का संग्रह किया । उन्होंने एक नये नगर गोइंदवाल की नींव भी रखी ।[72] इसके अतिरिक्त उन्होंने सिक्खमत को उदासी सम्प्रदाय से अलग कर दिया।[73] इस प्रकार सिक्खमत हिन्दूधर्म में विलीन होने से बच गया । इन कार्यों से गुरू अंगद देव ने गुरू नानक की चलाई लहर को संगठित और सुदृढ़ कर दिया । सिक्खमत की सरल शिक्षाओं के कारण जन—साधारण इसकी ओर आकर्षित हुआ । सिक्खमत लोग अब पुरातन हिन्दू समाज से धीरे—धीरे दूर होने लगे और एक नयी श्रेणी या भाई—चारे में बंधने लगे ।[74]

इधर हुमायूँ को अपना साम्राज्य बनाये रखने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा । सन् 1540 ई0 में कन्नौज के युद्ध में अन्तिम पराजय के पश्चात् लाहौर जाते हुए मुगल बादशाह हुमायूँ खहूर पहुँचा । गुरू अंगद का यश सुनकर आशीर्वाद लेने की इच्छा से[75] वह गुरू के दर्शनार्थ पहुँचा । गुरू अंगद उस समय बच्चों का खेल और कुश्तियाँ देख रहे थे और उनका ध्यान हुमायूँ की तरफ नहीं गया । उसे कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी, जिससे वह क्रोधित हो गया और इसे अपना अपमान समझ बैठा । उसने अपनी तलवार म्यान से निकालने के लिए उसकी मूठ पर हाथ रखा, लेकिन किसी कारण तलवार खींची न गई । गुरू जी यह देखकर मुस्करा कर कहने लगे कि बादशाह, यह तलवार शेरशाह का सामना करते वक्त कहाँ थी ? इसे अब आराम करने दे । जब तुझे दोबारा राज्य प्राप्त होगा, तो उस समय यह तेरी प्रजा की रक्षा के लिए काम आयेगी । मुगल बादशाह बहुत लज्जित हुआ और क्षमा मांगी । गुरू जी ने उसे ईरान जाने की

71. गोकुलचन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन (पंजाबी), पृ0— 18
72. नरिंदरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0— 18
73. वही, पृ0— 18
74. गोकुलचन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन (पंजाबी), पृ0— 19
75. मुसलमान लोग यह विश्वास करते थे कि पीर—फकीर और दरवेश लोग अपनी दुआ से बड़े से बड़ा संकट टाल सकते हैं । यही इच्छा हुमायूँ की थी । इसी तरह अकबर भी प्रत्येक धर्म के पीर, फकीर, देवी—देवताओं के यहाँ आशीर्वाद लेने जाया करता था ।

सलाह दी और कहा कि जब वह लौटकर आयेगा, तो अवश्य अपना राज्य प्राप्त करेगा ।

गुरू जी का कथन सत्य सिद्ध हुआ और लगभग 15 वर्ष बाद 23 जुलाई 1555 ई0 को[76] हुमायूँ अपना राज्य पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ । अब हुमायूँ गुरू जी के पक्ष में कुछ करना चाहता था, लेकिन तब तक गुरू जी ज्योति ज्योत समा गये थे । वे 29 मार्च सन् 1552 ई0 को परलोक सिधारे ।[77] इससे पूर्व उन्होंने गुरू अमरदास को तीसरा गुरू मनोनीत किया। इधर हूमायँ भी अपना राज्य अधिक देर तक न भोग सका । वह 24 जनवरी सन् 1556 ई0 को[78] एक दिन सायं पुस्तकालय की सीढ़ियों से फिसलकर गिर गया और दो दिन बाद उसका देहान्त हो गया ।[79]

श्री गुरू अमरदास जी का जन्म 5 मई सन् 1479 ई0 को जिला अमृतसर के बासर के ग्राम में श्री तेजभान भल्ला के घर हुआ, जोकि एक दुकानदार थे ।[80] गुरू अमरदास, गुरू नानक से केवल 10 वर्ष ही छोटे थे । आपने सन् 1552 ई0 में[81] गुरूपद सम्भालां और आपके गुरूगद्दी पर बैठने के लगभग 4 वर्ष पश्चात् अकबर 14 फरवरी सन् 1556 ई0 को भारत का बादशाह बना ।[82]

अकबर का जन्म पूर्ण–चन्द्रमा की रात्रि को वीरवार 23 नवम्बर सन् 1542 ई0 को हुआ, पिता ने उसका नाम 'बदरूद्दीन मुहम्मद अकबर' रखा ।[83] अकबर भारत में विदेशी था। उसकी रंगों में तुर्क, मंगोल तथा ईरानी– तीन जातियों का रक्त प्रवाहित था ।[84]

इस समय मुगल अपनी शक्ति पुनः संगठित करने में सफल हो रहे थे, तो उधर सिक्खों का भी अपना अलग अस्तित्व कायम हो चुका था ।[85] अकबर के समय सिक्ख गुरू गद्दी

76. मुनी लाल, हुमायूँ, पृ0– 203
77. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलासफी ऑव द सिक्ख रिलीजन, भाग–1, पृ0– 110
78. विलियम एरस्किन, दि एम्परर हुमायूँ, पृ0– 528
79. मुनी लाल, हुमायूँ, पृ0– 27
80. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलासफी ऑव द सिक्ख रिलीजन, भाग–1, पृ0–111
81. एस0बी0 बैनर्जी, गुरू नानक टू गुरू गोविन्द सिंह, पृ0– 105
82. वी0ए0 स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल, पृ0– 22
83. वही, पृ0– 11
84. वही, पृ0– 7–8
85. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 140

दो पीढ़ी आगे निकल चुकी थी । अकबर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का शासक था । इसी नीति के अन्तर्गत उसने समस्त उत्तरी भारत तथा दक्षिण के कुछ प्रदेशों पर भी मुगल सत्ता का आधिपत्य जमाया । इसके साथ ही उसने धार्मिक सहनशीलता की नीति भी अपनाई । जितने समय वह शासक रहा, सिक्खों और मुगलों के सम्बन्ध बड़े मधुर और शान्तिपूर्ण रहे ।

गुरू अमरदास ने गोइंदवाल में एक बाबली का निर्माण किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने लंगर प्रथा को बहुत महत्त्व दिया । यहाँ तक कि अकबर बादशाह और हरिपुर के राजा को भी गुरू जी से मिलने से पहले लंगर में से भोजन करना पड़ा ।[86] अब तक सिक्खों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी । सिक्खधर्म का सुचारू रूप से प्रचार करने के लिए गुरू जी ने (मंजी)[87] प्रथा की स्थापना की और 22 मंजियाँ स्थापित कीं । इसके अतिरिक्त जन्म–मरण की पुरानी कुरीतियों का त्याग कर नवीन व्यवस्था कायम की । सती–प्रथा और पर्दा–प्रथा का भी विरोध किया । हिन्दू पर्वों को नवीन ढंग से मनाया गया और दिवाली और वैशाखी को विशेष रूप से मनाने को कहा । गुरू नानक और गुरू अंगद के शब्दों और भजनों का संग्रह किया । इस प्रकार उन्होंने सिक्खमत को अधिक संगठित और शक्तिशाली बनाया ।

गुरू जी के इस बढ़ते हुए प्रभाव से खत्री तथा ब्राह्मण बहुत जलने लगे । उन्होंने गुरू जी के विरुद्ध षड्यंत्र रचने आरम्भ कर दिये । गेंदा मल के प्रार्थना करने पर गुरू अंगद देव ने उसकी भूमि पर गोइंदवाल नगर बसाया था । ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने अब गेंदा मल के पुत्र को अपनी भूमि वापिस लेने के लिए उकसाया और बादशाह अकबर के पास शिकायत करवा दी । अकबर ने इसे रद्द कर दिया ।[88] कुछ समय बाद शत्रुओं ने फिर योजना बनाई और बादशाह के पास शिकायत की कि गुरू जी हिन्दूधर्म के विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं । अकबर ने गुरू जी को दरबार में आने को कहा, लेकिन यह छूट दे दी कि अगर वे न आ सके तो अपना प्रतिनिधि भेज दें। वृद्धावस्था के कारण गुरू जी ने स्वयं न जाकर भाई जेठा को दरबार में भेज दिया । भाई जेठा ने बड़ी योग्यता से उक्त आरोपों का खण्डन किया । बादशाह सन्तुष्ट हो गया और उसने गुरू जी के पक्ष में निर्णय लिया ।

---

86. नरिंदरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0— 20
87. मंजी का अर्थ चारपाई है, जिस पर बैठकर गुरू जी उपदेश देते थे।
88. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑव द खालसा, भाग—1, पृ0— 174

लाहौर जाते समय अकबर गोइंदवाल में गुरू अमरदास के दर्शन करने गये । उन्होंने गुरू के लंगर में भोजन किया ।[89] बाद में वह गुरूजी से मिले । लंगर प्रथा ने अकबर को अत्यधिक प्रभावित किया और उसने गुरू को 84 गांव भेंट में देने की पेशकश की । गुरू जी ने नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया । अकबर ने वे ग्राम गुरू जी की लड़की बीबी भानी के, यह कह कर कि जैसे आपकी लड़की............. वैसे ही मेरी लड़की, नाम कर दिये, जिनसे बाद में अमृतसर की नींव पड़ी ।[90]

मुगल बादशाह अकबर की गुरू जी से मित्रता का सिक्खों को दो प्रकार का लाभ हुआ । प्रथम तो यह कि गुरू जी के सम्मान में वृद्धि हुई और दूसरे सिक्खधर्म के लोगों में लोकप्रिय होने लगा ।[91] इसके अतिरिक्त एक बार जब गुरू जी ने पंजाब के कृषकों की स्थिति के बारे में अवगत कराते हुए बादशाह अकबर से पूरे वर्ष का लगान माफ करने को कहा, तो अकबर ने तुरन्त लगान माफ कर दिया । इस प्रकार गुरू के प्रति बादशाह की भक्ति ने असंख्य लोगों को सिक्खधर्म का अनुयायी बना दिया ।[92] गुरू अमरदास जी 95 वर्ष की आयु में 1 सितम्बर सन् 1574 ई0 को[93] ज्योति ज्योत समा गये तथा भाई जेठा गुरू रामदास के नाम से सिक्खों के चौथे गुरू नियुक्त हुए ।

गुरू रामदास का जन्म 24 सितम्बर सन् 1534 ई0 को चूने मण्डी लाहौर में हुआ।[94] इनके पिता हरिदास और माता दया कौर थीं । बचपन में ही इनके माता—पिता का देहान्त हो गया था और ये अपने नाना के यहाँ ग्राम बासरके में रहते थे । 12 वर्ष की आयु में आप गुरू अमरदास के दर्शनों के लिए गोइंदवाल चले गये और फिर वहीं रह गये और सेवा करने लगे। इनकी अटूट श्रद्धा और प्यार से गुरू जी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री बीबी भानी का विवाह इनसे कर दिया ।

गुरू रामदास ने सन् 1574 ई0 में गुरूपद सम्भाला । उन्होंने सर्वप्रथम अपना

89. सन्तोष सिंह, सूरज प्रकाश— रास 1, छन्द 30
90. जी0एस0 छावड़ा, दि ऐडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग—1, पृ0— 137
91. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0— 62—63
92. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पंच प्रकाश, पृ0— 77
93. एस0सी0 बैनर्जी, गुरू नानक टू गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 105
94. सूरज प्रकाश, भाग—2, पृ0— 1491

ध्यान भवन–निर्माण–कला की ओर लगाया । अगर मुगल बादशाह बड़े–बड़े भवन निर्मित कर सकते थे, तो सिक्ख गुरू भी किसी से कम नहीं थे । गुरू नानक ने करतारपुर, गुरू अंगद ने खंडूर साहिब, गुरू अमरदास ने गोइंदवाल तथा गुरू रामदास ने रामदासपुर की स्थापना की जो बाद में अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । गुरू अमरदास की भाँति ही गुरू रामदास के प्रति भी मुगल बादशाह अकबर का मित्रतापूर्ण रवैया था । वह गुरू की योग्यता से भली–भाँति परिचित था ।

सिक्खधर्म को सुचारू रूप से चलाने और सिक्खों को अनुशासन में रखने के लिए गुरू रामदास ने मसन्द प्रथा[95] का प्रचलन किया । गुरू रामदास के काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अमृतसर का निर्माण शुरू करना है । सन् 1577 ई0 में गुरू जी ने 500 बीघा जमीन तुंग मालिकों से 700 अकबरी रूपये देकर खरीद ली ।[96] इसमें रामदासपुरा नामक नगर बसाया गया । बाद में गुरू अर्जन देव ने इस कार्य को पूरा किया ।

इसके अतिरिक्त जब पंजाब में दुर्भिक्ष पड़ गया और किसानों की दशा शोचनीय हो गई, तो गुरू जी के कहने पर अकबर ने पंजाब के किसानों का वर्ष भर का लगान माफ कर दिया । बादशाह के इस मैत्रीपूर्ण व्यवहार से गुरू जी के सम्मान में वृद्धि हुई और जाटों तथा जमींदारों की बहुसंख्या ने सिक्ख धर्म अपना लिया । इस प्रकार सिक्ख दिन–प्रतिदिन उन्नति करते जा रहे थे, धर्म फैल रहा था और अनुयायियों की संख्या बढ़ रही थी । पृथक रीति–रिवाज तथा तीर्थस्थान बन चुके थे । सिक्खों के इस प्रसार का प्रमुख कारण शासन की उदार धार्मिक नीति भी थी ।

मुगल बादशाह अकबर ने सिक्खों की प्रगति में कोई बाधा नहीं डाली, अपितु उनके प्रति उसका व्यवहार बहुत मैत्रीपूर्ण था । यह तो माननीय तथ्य है कि अकबर बादशाह विभिन्न धर्मों के मध्य झगड़े को पसन्द नहीं करता था । अपने अनुभव के आधार पर वह जानता था कि प्रत्येक धर्म में सत्य का गुण है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सिक्खधर्म से, जिसके आदर्श की कुंजी प्रेम थी, अकबर बहुत प्रभावित था ।[97]

---

95. मसन्द, मसनद–ऐ–आली का बिगड़ा हुआ रूप है ।
96. तेजा सिंह एण्ड गण्डा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव द सिक्ख्स, भाग–1, पृ0– 25
97. अकबर सिक्ख गुरूओं से बहुत प्रभावित था और उसने तीन गुरूओं अमरदास, रामदास और गुरू अर्जुनदेव से मुलाकातें कीं ।

गुरू रामदास 7 वर्ष तक गुरूपद को सुशोभित करते रहे । वे 1 सितम्बर सन् 1581 ई0 को ज्योति–ज्योत समाये ।[98] उन्होंने अपने छोटे पुत्र अर्जुन[99] को गुरू मनोनीत किया।

बाबर ने हमेशा सिक्खों को हिन्दू ही समझा । उसने गुरू नानक को एक हिन्दू फकीर समझा था । उस समय के हिन्दू लोग गुरू नानक को अपना गुरू और मुसलमान लोग उन्हें अपना पीर मानते थे ।[100] इसलिए उसने सिक्खों के प्रति कोई विशेष धार्मिक नीति नहीं अपनाई।[101] इसके अतिरिक्त अभी सिक्खों की संख्या भी बहुत कम थी, इसलिए बाबर ने हिन्दुओं और सिक्खों के प्रति एक सी नीति अपनाई ।

हुमायूँ एक सुन्नी मुसलमान था और उसने अपने पिता की धार्मिक नीति को जारी रखा । वह जीवनभर लुढ़कता रहा और लुढ़कते–लुढ़कते जीवन से बाहर हो गया । शेरशाह से पराजित होकर उसे देश भी छोड़ना पड़ा । जीवन की इसी गतिशीलता में वह एक दिन सिक्खों के दूसरे गुरू अंगद देव को मिला और आशीर्वाद पाकर ईरान चला गया । 15 वर्ष पश्चात् 23 जुलाई सन् 1555 ई0 को[102] हुमायूँ दिल्ली का राज्य पुनः प्राप्त करने में सफल हो गया । अतः मात्र एक घटना के गुरू अंगददेव के काल में सिक्ख–प्रगति में कोई रूकावट नहीं आई और गुरू के नेतृत्व में सिक्खधर्म की लहर और भी शक्तिशाली हो गई । गुरू अंगद देव का देहान्त 29 मार्च सन् 1552 ई0 को हो गया था ।[103]

मुगल बादशाह अकबर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का शासक था । उसकी धार्मिक नीति को दो भागों में बांटा जा सकता है । पहले भाग मेंसन् 1555 से सन् 1579 ई0 तक का

---

98. सैयद मुहम्मद लतीफ, हिस्ट्री ऑव द पंजाब, पृ0— 252—53
99. सिक्ख परम्पराओं के अनुसार एक बार गुरू अमरदास स्नान कर रहे थे कि अचानक चौकी का पाया टूट गया । बीबी भानी ने अपना हाथ पावे की जगह रख दिया, जिससे वह जख्मी हो गया । गुरू जी बहुत प्रभावित हुए और पुत्री को वर मांगने के लिए कहा। बीबी भानी ने कहा कि गुरू–गद्दी उसके परिवार में ही बनी रहे । गुरू जी ने वचन दे दिया और परिणामस्वरूप गुरू रामदास के घर गुरू–गद्दी पैतृक हो गई ।
(शमशेर सिंह अशोक, – पंजाब दा इतिहास, पृ0— 192)
100. गुरू नानक शाह फकीर, "हिन्दुओं का गुरू, मुसलमानों का पीर" ।
101 प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख नेशन, पृ0— 82
102. रमाशंकर अवस्थी, द मुगल एम्परर हुमायूँ, पृ0— 478
103. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑव सिक्ख, रिलीजन, भाग—1, पृ0— 110

समय आता है और दसूरे में सन् 1580 से 1605 ई0 तक का । अपने पहले समय में उसने अपने पूर्वजों की नीति का पालन किया । उसने हेमू पर विजय पायी, इस प्रकार वह एक इस्लामिक विजेता था । उसने कई हिन्दूओं को मुसलमान बनाया ।[104] जब 1572—73 में कांगड़ा विजय किया गया, तो कांगड़ा के देवी—मन्दिर में लगभग 200 गायों की हत्या की गई ।[105]

लेकिन सन् 1580 ई0 के बाद अकबर ने अचानक अपनी धार्मिक नीति बदल दी। उसने धार्मिक सहनशीलता की नीति अपनाई । इसके बाद वह कितने दिनों तक जीवित रहा, उसने सिक्खों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखे ।

इस प्रकार सिक्खों के प्रथम चार गुरु एवं उनके समकालीन तीन मुगलशासकों ने परस्पर सम्बन्धों में संघर्ष की स्थिति न आने दी । इसका कारण यही था कि इन चार गुरूओं ने सिक्खधर्म की पृष्ठभूमि तो अवश्य तैयार कर दी थी, परन्तु अधिक संगठनात्मक ढाँचा देकर उसे सुदृढ़ता एवं शक्तिशाली रूप न दे पाये थे । उधर मुगल बादशाह भारत की अन्य राजनीतिक शक्तियों से ही उलझते रहे । अतः इस समय सिक्खों एवं मुगलों के हितों में परस्पर टकराव के तत्व न थे, बल्कि जब अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परिपालन कर स्वयं विभिन्न धर्मों एवं सिक्ख गुरूओं को सम्मान दिया तो पंजाब में सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध मधुर बने रहे । कहीं कोई तनाव व वैमनस्य न था । दोनों ही के क्षेत्र अलग—अलग थे । एक धर्म—सुधार के रूप में सामाजिक परिवर्तनों के लिए क्रियाशील था, जबकि दूसरा साम्राज्यवाद के रूप में राजनीतिक परिवर्तनों का प्रणेता था । दोनों ही वर्गों एवं मतावलम्बियों में परस्पर समझ एवं शान्ति के लिए उत्सुकता विद्यमान थी, अतः इसी सदी का काल—सिक्ख—मुगल—सम्बन्धों की दृष्टि से शान्ति, सौहार्द्र एवं भ्रातृत्व का काल रहा ।

---

104. बलूचमैन, आइन—ए—अकबरी ।
105. मुन्तभाव—ए—तवारीख, पृ0— 162

—00—

द्वितीय–अध्याय

।। सिक्खों का संगठन (1605 से 1607 तक) ।।

(1) सिक्ख संगठन में श्री गुरू अर्जुनदेव का योगदान :

सिक्ख धर्म का उद्‌भव एक अलग प्रक्रिया थी जोकि मुगल उद्‌भव की प्रक्रिया के समानान्तर ही थी ; परन्तु जहाँ मुगल प्रारम्भ से ही राजनैतिक एवं सैनिक रूप से संगठित होते रहे, वहीं सिक्खों का संगठनात्मक ढाँचा किसी निश्चित प्रक्रिया का परिणाम नहीं अपितु परिस्थितिजन्य एक परिणाम था जिसकी पृष्ठभूमि सिक्खों के बढ़ते प्रभाव, इस बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न शंका एवं परिणामस्वरूप सिक्ख–मुगल–विद्वेष में छुपी हुई थी । गुरू नानक ने ऐसी संस्था की नींव रखी थी जिसका आधार दया, स्नेह, क्षमा के रूप में मानवीय प्रवृत्तियाँ थीं, जबकि मुगल शक्ति का प्रारम्भिक आधार ही सत्ता, शक्ति एवं वैभव आदि आततायी प्रवृत्तियों पर आधारित था । प्रारम्भ की शताब्दियों में तो ये दोनों धाराएँ एक–दूसरे के समानान्तर चलती रहीं और कहीं कोई संघर्ष एवं टकराव नहीं था । परन्तु इस विस्तार पाते प्रभाव–क्षेत्रों ने जब एक–दूसरे के क्षेत्रों में अतिक्रमण करना प्रारम्भ किया और उसमें जब व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं एवं धार्मिक संकीर्णताओं ने भी योगदान करना प्रारम्भ कर दिया, तो 17वीं सदी के प्रारम्भ से ही संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी और मानवीय प्रवृत्तियों को भी आततायी प्रवृत्तियों के प्रत्युत्तर में सैनिक स्वरूप को धारण करना पड़ गया ।

मुगल बादशाह जहांगीर इन्हीं आततायी प्रवृत्तियों यानी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एवं धार्मिक संकीर्णताओं का प्रतीक था, जिसके पास पूरी तरह से स्थापित राज्यसत्ता का सैन्यबल था । दूसरी और गुरू अर्जुन देव उन मानवीय प्रवृत्तियों, अर्थात् स्नेह, प्रेम और दया के प्रतीक थे, जिनके पास स्वयं का आत्मबल था । परन्तु संघर्ष की इस प्रथम घटना में इस 'आत्मबल' को ही बलिदान देना पड़ गया और सिक्ख संगठन में प्रतिक्रियात्मक एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, जिसने इन सिक्खों को सैनिकों में परिवर्तित कर दिया ।

17वीं सदी के प्रारम्भ से ही सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों का महत्त्व बढ़ने लगा था । इनकी पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी । दोनों ही अपने–अपने क्षेत्रों में सुदृढ़ता अर्जित कर रहे थे । भारत में मुगल वंश इस समय तक अपने पांव अच्छी तरह जमा चुका था और दूसरी ओर सिक्खमत भी अपना अलग अस्तित्व स्थापित कर चुका था ।[1]

---

1. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 140.

गुरू अर्जुनदेव का जन्म 15 अप्रैल सन् 1563 ई0 को[2] गोइंदवाल में चतुर्थ गुरू रामदास के घर हुआ । इनकी माता बीबी भानी तृतीय गुरू अमरदास की पुत्री थीं । वे बड़ी धार्मिक विचारों वाली महिला थीं । अपनी माँ की धार्मिक प्रवृत्ति ने बालक अर्जुन को बुद्धिमान और सूझवान बनाया । वे अपनी आयु के बच्चों से भिन्न थे और उनमें बचपन की चंचलता और चपलता का अभाव था । जब गुरू अर्जुनदेव 18 वर्ष के थे, तो सन् 1581 ई0 में गुरू रामदास ने इन्हें गुरू—गद्दी पर सुशोभित किया । गुरू अमरदास तक गुरू—गद्दी का स्वरूप आध्यात्मिक था, किन्तु अब एक ही परिवार से सम्बन्धित होने के कारण इसने राजनैतिक महत्त्व भी पा लिया था । गुरू अब 'सच्चा बादशाह' बन गया था ।[3] इस प्रकार गुरूगद्दी का पैतृक तथा राजनीतिक रूप धारण करना कालान्तर में सिक्खों के चरित्र में परिवर्तन का कारण बना और इस सिद्धान्त से गुरू गद्दी के उत्तराधिकार के लिए झगड़े होने भी अनिवार्य हो गये । मुगल बादशाह अकबर का मैत्रीपूर्ण व्यवहार जो गुरू अमरदास और रामदास के समय से चला आ रहा था, गुरू अर्जुन देव के समय भी निरन्तर प्रगति पर था।

गुरू अर्जुनदेव ही पहले गुरू थे जिन्होंने सिक्खों को सही रूप से संगठित किया। वे महान् संगठनकर्ता थे । उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण कार्य आदिग्रन्थ का सम्पादन करके किया जो **"श्री गुरू ग्रन्थ साहिब"** के नाम से जाना जाता है । पूर्ववर्ती चारों गुरूओं की वाणी, शब्दों और उपदेशों को एकत्र कर एक ग्रन्थ का रूप दिया । इन गुरूओं के अतिरिक्त कई अन्य प्रमुख भक्तों की वाणी भी इसमें सम्मिलित की गई । इसके साथ—साथ आदिग्रन्थ में कई भाषाओं का भी समावेश किया गया, जैसे— पंजाबी के अतिरिक्त हिन्दी, फारसी, ब्रजभाषा, अरबी, संस्कृत उर्दू, सिन्धी और मराठी आदि । ये भाषाएं ऐसे ढंग से संजोयी गयीं कि वे गुरूमुखी के अलावा दूसरी भाषा प्रतीत ही नहीं होती ।[4] इस प्रकार आदि ग्रन्थ के सम्पादन ने सिक्खों के संगठन को सुदृढ़ किया ।[5]

गुरू अर्जुन देव ने अपने पिता द्वारा छोड़े गये कार्य को पूर्ण किया । 'रामदासपुरा'

---

2. प्रि0 तेजा सिंह, सिक्ख इतिहास दीआं कुछ झांकियाँ, भाग—3, पृ0— 23
3. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0— 39.
4. वार्ता— आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली (बी), ता0 06—12—81
5. आई0बी0 बैनर्जी, खालसे दी उत्पत्ति (पंजाबी), भाग—1, पृ0— 159

जोकि उनके पिता ने बसाना शुरू किया था, गुरू अर्जुन ने उसका निर्माण–कार्य बड़े पैमाने पर पुनः आरम्भ किया । उन्होंने अमृतसर के सरोवर के मध्य में एक मन्दिर बनवाया । इसकी नींव गुरू जी ने प्रसिद्ध सूफी सन्त साँई मियाँ मीर से रखवाई । इसके चार दरवाजे चारों ओर खुलते हैं, जिसका मतलब है कि यह मन्दिर चारों वर्णों के लोगों के लिए खुला है । कालान्तर में यह सिक्खों का पवित्र स्थान बन गया । जो आज **'स्वर्ण मन्दिर'** के नाम से जाना जाता है । विश्व के पृथक पंथों के इतिहास के मध्य सिक्खों के सम्बर्द्धन और विकास की यह घटना युगान्तकारी मानी जाती है ? यह स्थल सिक्खों के लिए ऐसा पवित्र स्थान बना जैसे हिन्दुओं के लिए गंगा और मुसलमानों के लिए मक्का पवित्र हैं । यही नहीं बल्कि अमृतसर की एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में भी प्रगति हुई ।

अमृतसर को गुरू अर्जुन ने सिक्ख–धर्मतंत्र के केन्द्र के रूप में विकसित किया । इससे माझे के लोगों से सिक्खमत के प्रचार में बड़ा योगदान मिला ।[6] इस क्षेत्र में गुरू अर्जुनदेव ने तरनतारन नाम का एक और कस्बा बसाया और इसमें एक विशाल सरोवर का निर्माण किया गया। यह क्षेत्र काश्तकारों की बलवान नस्ल का घर है ।[7]

गुरू अर्जुन देव ने अपने आय–व्यय को सुचारू रूप से चलाने के लिए मसन्द प्रथा कायम की । इस समय तक सिक्खों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गई थी और वे पेशावर से लेकर दिल्ली तक फैले हुए थे ।[8] इसलिए भेंट करना एक कठिन कार्य था । गुरू जी ने भेंट देने वालों की इच्छा पर भेंट की रकम की निश्चित कर दी और इसे एकत्र करने के लिए मसन्द नियुक्त किये गये ।[9] इनका कर्तव्य यह था कि वे भेंट को अमृतसर में गुरू जी को दें, जबकि बैशाखी के दिन वे एक भारी दरबार किया करते थे ।[10]

इस प्रकार अब गुरू जी सिक्ख–संगतन का बजट निश्चितन्तापूर्वक बना सकते

6. गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 32
7. अमृतसर जिले का गजेटियर, (1883–84)
8. जी0सी0 नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 33
9. ये मसन्द गुरू के एजेन्ट होते थे, जो सिक्खों से भेंट लेकर गुरू तक पहुँचाते थे। पृ0– 159
10. जी0सी0 नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 34

थे, क्योंकि गुरू जी को भेंटों की अदायगी मुगल—करों की अदायगी से भी अच्छी तरह हो जाती थी ।[11] गुरू जी ने सिक्खों को घोड़ों के व्यापार के लिए भी प्रेरित किया । इसका व्यावहारिक लाभ यह हुआ कि सिक्ख व्यापारी सम्पन्न भी बन गये और सिक्खों में घुड़सवारी का चाव भी पैदा हुआ । कालान्तर में यही सिक्ख उत्तरी भारत के सर्वोत्तम घुड़सवार बन गये ।[12]

इसके अतिरिक्त गुरू अर्जुन देव ने सिक्खधर्म के प्रचार में भी उत्साहपूर्वक भाग लिया और दूर—दूर तक इसका प्रचार किया । तरन—तारन, खंडूर, गोइंदवाल, सरहाली और खानपुर में सिक्खधर्म के प्रचार के प्रयास किये गये । सामाजिक कार्यो को बढ़ावा देने की दृष्टि से तरन—तारन में एक दवाखाना भी खोला गया, जहाँ रोगियों को मुफ्त दवा मिलती थी । इसके अतिरिक्त आपने कई कुओं और बावलियों का भी निर्माण करवाया । आपने गांव वडाली के पास एक छः हरटों वाला कुआँ बनवाया । लाहौर के डब्बी बाजार में आपने एक बांवली और चूने मण्डी में एक गुरूद्वारे का निर्माण करवाया । इसके अतिरिक्त आपने कलानौर, डेरा—बाबा—नानक और करतारपुर में भी सिक्खमत का प्रचार किया ।

सिक्खमत निरन्तर उन्नति कर रहा था और सिक्खों की संख्या में भी लगातार वृद्धि हो रही थी । इस समय सिक्खों के पास अपना धर्म—ग्रन्थ, अपना धार्मिक नेता, अपना धर्म—मन्दिर और अपना अलग से कोष भी था । अब वह फकीरों की टोली मात्र नहीं, बल्कि व्यावहारिक व्यक्तियों का एक धर्म—समूह बन गया था । इसमें व्यापारी, जमींदार, दुकानदार, सिपाही और धर्म—प्रचारक— सभी प्रकार के लोग थे ।[13] गुरू अर्जुनदेव का दरबार और गुरूगद्दी की शान राजाओं जैसी थी ।[14] लेकिन गुरू अर्जुन स्वयं बहुत सादा रहते थे । इस प्रकार अपनी चारित्रिक दूर—दर्शिता एवं सहनशीलता के साथ गुरू अर्जुन देव ने सिक्खमत का प्रचार किया और सिक्खों का संगठन किया । परन्तु क्रिया का परिणाम प्रतिक्रिया में होता आया है ।

11. जी0सी0 नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0— 37
12. रणजीत सिंह के समय से पहले सारी सिक्ख सेनाएं घुड़सवार होती थीं ।
13. सोहनसिंक सीतल, सिक्ख राज कियें बनिया, , पृ0— 14
14. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0— 76

गुरू अर्जुन के इस बढते हुए सम्मान और प्रभाव को देखकर अन्य लोग, मुख्यतः ब्राह्मण एवं खत्री लोग ईर्ष्या करने लगे । मुगल बादशाह अकबर के साथ गुरू जी के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे और बादशाह स्वयं भी गुरू जी से प्रभावित था । लेकिन इन मित्रतापूर्ण सम्बन्धों में गुरू अर्जुनदेव के बड़े भाई पृथिया द्वारा हस्तक्षेप किया गया और इन सम्बन्धों में धीरे–धीरे जटिलता आनी शुरू हो गई ।

पृथिया स्वयं को गुरूगद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था, लेकिन गुरू रामदास ने अर्जुनदेव को ही गुरू नियुक्त किया । इससे बड़ा भाई पृथिया ईर्ष्या की ज्वाला में जलने लगा । ईर्ष्या की आग ने उसके हृदय से भ्रातृत्व और मानवीय भावनाओं को खत्म कर दिया। वह अपने भाई के विनाश के लिए नारी–मन की कोमल भावनाओं से अज्ञात अपनी पत्नी करमो द्वारा प्रोत्साहित होकर सदैव कपट एवं षडयंत्र रखता रहा ।[15] उसने मुगल अधिकारी सुलहीखां के साथ गठजोड़ किया और अकबर के पास प्रार्थना की, कि जिस गद्दी पर अर्जुनदेव ने अन्यायपूर्ण अधिकार किया है, वह अधिकार मुझसे सम्बन्धित है । उसने यह भी कहा कि गुरू अब मुगल अधिकारियों की भी परवाह नहीं करते हैं ।[16] परन्तु गुरू अर्जुनदेव द्वारा स्थिति की सही जानकारी देने पर अकबर ने यह शिकायत रद्द कर दी ।

समय–समय पर कई शिकायतें की गयीं, लेकिन अकबर ने अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन न किया । सुलही खाँ की अचानक मृत्यु हो जाने से पृथिया का एक समर्थक समाप्त हो गया, जिससे वह कमजोर पड़ गया । लेकिन शीघ्र ही उसने कुछ ब्राह्मणों और मुसलमानों के कहने पर यह शिकायत कर दी कि गुरू द्वारा संकलित आदि ग्रन्थ में हिन्दू धर्म और इस्लामधर्म की निन्दा की गई है । इस पर अकबर ने पुनः गुरू अर्जुनदेव को अपनी स्थिति स्पष्ट करने को कहा ।[17] गुरूजी ने भाई जेठा और भाई बुडढ़ा को ग्रन्थ सहित दरबार में भेजा। मुगल बादशाह ने हर तरफ से इस ग्रन्थ की जांच की, लेकिन उसे इसमें कोई आपत्तिजनक बात ध्यान में नहीं आई । बादशाह ने इसे संयोग की प्रथम महान् धर्म–पुस्तक कहा। वह गुरू के कार्यों

15. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑव जहांगीर, पृ0— 137
16. संतोष सिंह, सूरजप्रकाश रास—3, पृ0— 18—25।
17. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—3, पृ0— 81—83

से सन्तुष्ट हुए, क्योंकि यह कुछ धर्मो का प्रतिनिधित्व करता है जिसे उन्होंने पवित्र माना है ।

मुगल बादशाह के इस व्यवहार के साथ ही उसकी सिक्खों के प्रति सहनशीलता व मित्रतापूर्ण नीति भी निरन्तर दृष्टिगोचर होती है । इसी सहनशीलता के कारण वह सभी सिक्ख गुरूओं का सम्मान करता था । बदाँयूनी भी इसबात की पुष्टि करता है कि एक बार बादशाह पूर्ण वैभव के साथ अपने सैनिकों सहित व्यास नदी को पार कर गोइंदवाल में गुरू अर्जुन देव से भेंट करने को गया, जिनकी शिक्षाओं और चरित्र का वह प्रशंसक था । बादशाह ने लंगर में भोजन ग्रहण किया और कुछ भेंट देने की पेशकश भी की । गुरू जी के नम्रतापूर्वक अस्वीकार करने पर भी उसने लंगर में कुछ दान दिया ।[18]

जब अकबर ने लाहौर से प्रस्थान किया और वह बटाला पहुँचा तो उसे मुसलमान फकीरों और संन्यासियों के मध्य झगड़े की बात ज्ञात हुई तो वह उस स्थान पर गया और उन मुसलमान फकीरों को बन्दी बना लिया, जिन्होंने मन्दिरों को तोड़कर उनका अपमान किया था। उसने मन्दिरों की मरम्मत करवाने की भी आज्ञा दी और वहाँ से वह व्यास पार कर गुरू अर्जुनदेव, जो कि बाबा नानक के शिष्य व उत्तराधिकारी थे, के पास गया । बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ जब गुरूजी ने गुरू नानक की ईश्वरीय एकता पर स्तुतियाँ पढ़कर सुनायीं । इसी अवसर पर गुरूजी ने प्रार्थना की कि पंजाब में अनाज का भाव चढ़ जाने से लोगों को कर देने में कठिनाई है । बादशाह ने प्रार्थना स्वीकार करके इस कर को घटा कर 1/10 या 1/12 रहने दिया।[19]

अकबर के अनुकूल व्यवहार ने सिक्खधर्म को न केवल पुरातनपन्थी मुसलमानों के तीव्र विरोध से बचाया, बल्कि इसकी शीघ्र उन्नति करने के लिए आने वाली अनेक परिस्थितियों को भी उत्पन्न किया । मुगल बादशाह अकबर के शक्तिशाली और सुदृढ़ राज्य—प्रबन्ध ने भारत में शान्ति स्थापित की, जिसने सिक्खों के इस प्रारम्भिक उद्भव को स्थानीय विद्रोह और विदेशी आक्रमणों से बचाया और बिना बाधा उसे आगे बढ़ने के योग्य बनाया । एक राष्ट्र के निर्माण के लिए चारों अनिवार्य तत्व— धर्मग्रन्थ, नेता, मन्दिर और कोष— सिक्खों के लिए

18. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—3, पृ0—83
19. खुलासत—उल—तवारीख (जाफर हसन का संस्करण), पृ0— 425।

गुरू अर्जुनदेव की ही धर्माध्यक्षता के अन्त तक सुरक्षित हो गये ।[20] इन्हीं प्रारम्भिक तत्त्वों ने सिक्खधर्म को स्थायित्व प्रदान किया ।

जब तक मुगल बादशाह अकबर जीवित रहा, सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध शान्तिमय एवं मित्रतापूर्ण बने रहे और संघर्ष की कोई सम्भावना ही उत्पन्न नहीं हुई । परन्तु कबर का शासनकाल ही सिक्ख–मुगल–मित्रता के अन्तिम वर्ष थे । बादशाह की सहनशीलता की नीति से परस्पर स्नेह और सहयोग का वातावरण बना रहा । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो पंजाब में पांच शताब्दियों के पश्चात् धार्मिक अत्याचारों का अन्त और उदार राज्य की स्थापना हो गयी थी।[21] लेकिन शीघ्र ही 17 अक्टूबर सन् 1605 ई0 को[22] मुगल बादशाह अकबर के देहान्त के पश्चात् एकदम संकट सामने आया । जहांगीर के सिंहासनारूढ़ होते ही परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयीं और सिक्ख–मुगल–सहयोग कायुग ही समाप्त हो गया । जहांगीर के आगमन के साथ ही सिक्खों को प्रथमबार राज्य की ओर से राजनैतिक चुनौती का सामना करना पड़ा । अकबर की तुलना में जहांगीर धार्मिक सहिष्णु न था । इस पर मुस्लिम धार्मिक उलेमाओं ने नवीन सम्राट के विहारों को प्रभावित कर, सिक्खधर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के बारे में उसे सशंकित कर दिया ।

---

20. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग–1, जालंधर, 1960, पृ0– 164
21. एस0सी0 बैनर्जी, पृ0– 113.
22. वी0ए0 स्मिथ, अकबर द ग्रेट, पृ0– 234

(2) सिक्ख तथा शाहजादा खुसरो का विद्रोह :

सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध अब तक बहुत ही शान्तिपूर्ण एवं मित्रतापूर्ण पनप रहे थे। गुरू अमरदास से लेकरपंचम गुरू अर्जुनदेव तक यह सम्बन्ध मुगल बादशाह अकबर के राज्यकाल में अपनी मित्रता के चरमोत्कर्ष पर थे । अकबर धर्मान्ध नहीं था, बल्कि इसके विपरीत वह सहनशील, विवेकशील और धार्मिक व्यक्ति था जो सभी धर्मों का आदर करता था । इसी कारण वह सिक्ख–गुरूओं की पवित्रता और महानता से भली–भाँति परिचित था और उसने समय–समय पर उनके दर्शन किये और भेंटें प्रस्तुत की । अपनी ज्ञानशीलता और दूरदर्शिता का प्रदर्शन करते हुए मुगल बादशाह अकबर ने गुरू अर्जुनदेव के विरुद्ध लगाये गये संकीर्ण आरोपों को सत्य न माना और गुरू के कार्यों को ही सही बताया । परिणामस्वरूप अकबरके शासनकाल में गुरू के शत्रुओं को कोई सफलता प्राप्त न हो सकी । सिक्खों को मुगल बादशाह अकबर की ओर से नाराजगी का कोई अवसर भी प्राप्त न हो सका, जिसके कारण मैत्रीपूर्ण एवं शान्तिपूर्ण सम्बन्धों में किसी प्रकार की बाधा पड़ती ।

अकबर अपने पौत्र खुसरो को बहुत स्नेह करता था, यहाँ तक कि उसने खुसरों को अपना उत्तराधिकारी बनाना भी निश्चित कर रखा था। खुसरो जन–साधारण का आदर्श, अत्यन्त चरित्रवान और सुसंस्कृत युवक था । वह सभी धर्मों के प्रति अपने पितामह की तरह ही उदार दृष्टिकोण रखता था । यह अलग तथ्य है कि अकबर ने मृत्यु से पूर्व जहाँगीर को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया ।

अकबर का 17 अक्टूबर सन् 1605 ई0 को देहान्त हो गया ।[23] एक सप्ताह पश्चात् अर्थात् 24 अक्टूबर सन् 1605 ई0 को सलीम बड़े समारोह के साथ आगरा के दुर्ग में अपने पिता के सिंहासन पर आसीन हुआ और उसने मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी की उपाधि धारण की ।[24]

लेकिन खुसरों, जो अपने पितामह का स्नेहपात्र रह चुका था, राजगद्दी के लिए अब भी लालायित था । इसके अतिरिक्त उसे उदारवादियों का भी सहयोग प्राप्त था । इसलिए

23. वी0ए0 स्मिथ, अकबर द ग्रेट, पृ0– 113
24. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑव जहांगीर, पृ0– 120–21

उसने अपने पिता जहांगीर के गद्दी पर बैठने के छः मास पश्चात् ही विद्रोह कर दिया ।[25] जहाँगीर ने इस विद्रोह को कुचलने तथा खुसरो को पकड़ने के लिए शाही सेना को आज्ञा दी, परन्तु खुसरो बच निकला और उसने पंजाब के रास्ते अफगानिस्तान की ओर जाने का प्रयत्न किया । खुसरो जब जेहलम को पार कर रहा था, तो शाही सेनाओं द्वारा कैद कर लिया गया और जंजीरों में जकड़ कर अपने पिता के पास ले जाया गया ।

उधर इस समय तक गुरू अर्जुनदेव के बढ़ रहे सम्मान एवं प्रभाव के कारण अनेक लोग सिक्खधर्म स्वीकार कर रहे थे । बहुत बड़ी संख्या में मुसलमानों ने भी सिक्ख होना स्वीकार कर लिया था । यह बात कट्टरपंथी शरई मुसलमानों के लिए असहनीय थी । शेख अहमद सिरहिन्दी और शेख बुखारी जैसे कट्टर मुसलमानों की सहायता से ही जहांगीर सिंहासन पर बैठा था, अतः इन लोगों का उस पर पूर्ण प्रभाव था और ये लोग सिक्ख धर्म के कट्टर विरोधी थे । इसलिए शेख बुखारी ने जहांगीर के पास झूठी शिकायत लगाई कि गुरू अर्जुनदेव ने इस विद्रोह में खुसरों की सहायता की है, अतः वह भी बागी है और उसे सजा–ए–मौत मिलनी चाहिए । जहांगीर ने बिना पड़ताल करवाये ही उनकी बातों पर विश्वास कर लिया और गुरू अर्जुन को लाहौर बुला लिया गया ।

लेकिन वास्तविकता यह है कि सिक्खों का इस विद्रोह के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं था । इस समय गुरू अर्जुनदेव गोइंदवाल में न होकर अमृतसर में थे और न ही विद्रोही खुसरो ने गुरू जी से भेंट की थी, अतः गुरू अर्जुन द्वारा उसकी सहायता करने को कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।[26]

---

25. मोहम्मद अकबर, द पंजाब अण्डर द मुगल्स, पृ0– 191
26. गुरूमत मिशनरी कॉलिज, नई दिल्ली, दस गुरू साहिबान, पृ0– 66

(3) श्री गुरू अर्जुनदेव का बलिदान :

गुरू अर्जुनदेव के शत्रु, जिन्हें अकबर के समय में सफलता न मिल सकी थी, अब उसके पुत्र जहांगीर के शासक बनते ही पुनः सिर उठाने लगे । पृथिया के अतिरिक्त इस समय कुछ हिन्दू और मुस्लिम अधिकारी भी गुरू जी से अप्रसन्न थे । हिन्दू अधिकारियों में अत्यधिक महत्वपूर्ण कलानौरी क्षत्रिय थे, इनमें से चन्दू का नाम मुख्यरूप से लिया जाता है ।[27] मुस्लिमों में से सुलाबीखाँ अग्रणी थे । इन मतभेदों के कुछ व्यक्तिगत कारण भी थे ।

गुरू अर्जुनदेव ने जब 'आदिग्रन्थ' का सम्पादन करना चाहा, तो उन्होंने बिना जाति–भेद का ध्यान किये अपने विभिन्न भक्तों को अपनी रचनाएं ग्रन्थ में शामिल करवाने के लिए कहा । इनमें से छज्जू भक्त, काहना, शाह हुसैन और पीलू भी अपनी–अपनी रचनाओं सहित उपस्थित हुए ।[28] गुरूजी को कुछ भक्तों की रचनाओं में कुछ विसंगतियाँ दिखाई दीं और उन्होंने उनसे नम्रतापूर्वक कहा कि ये ग्रन्थ में दर्ज करने योग्य नहीं । इस पर अन्य भक्त तो चले गये, लेकिन कहाना कुछ अधिक बिगड़ गया और गुरू के विरोधियों में शामिल हो गया ।

यही नहीं, इसके अतिरिक्त मुसलमानों का रूढ़िवादी वर्ग भी सिक्खमत के विरोध में था । पंजाब में यह वर्ग सिरहिन्दी के नेतृत्व में नक्शबन्दी सम्प्रदाय के नाम से उभरा और सिक्खों का इसने डटकर विरोध किया ।[29]

इन तत्त्वों को जहांगीर के धार्मिक विचारों से भी प्रोत्साहन मिला। जहांगीर अपने पिता की भाँति सहनशील नहीं था और यह तथ्य उसके राजगद्दी पर बैठते ही दृष्टिगोचर हो गया । जैसा कि वह स्वयं लिखता है कि उसने मुगल–राज्य प्रबन्ध में उन इस्लामिक नियमों की शुरूआत की, जिनको अकबर के समय में कोई स्थान प्राप्त नहीं था। इस प्रकार उसने गैर–मुसलमानों के प्रति अत्याचार की नीति अपनाई ।[30] अपने शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में

27. कृपया देखिए – परिशिष्टि–(ख) ।
28. जीत सिंह सीतल, तारीख–ए–पंजाब (पंजाबी अनुवाद), पृ0– 24
29. सुरजीत सिंह गांधी, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख गुरूज, पृ0– 244
30. वी0ए0 स्थिम, अकबर द ग्रेट, पृ0– 233,

उसने गैर–मुस्लिमों के विरुद्ध संकीर्ण धार्मिक नीति अपनाई ।[31]

जहाँगीर कट्टर व रूढ़िवादी मुसलमानों और नबाबबन्दी सम्प्रदाय की सहायता से ही गद्दी पर बैठा था, अतः वहउन्हें प्रसन्न करने के लिए एक अवसर की खोज में था और उसकी यह इच्छा ही गुरू अर्जुन देव के बलिदान का कारण बन गयी ।

गुरू अर्जुनदेव सिक्खधर्म के केवल प्रथम महान् प्रबन्धक ही नहीं थे, बल्कि शहीदी के ताज को पाने वाले भी प्रथम ही थे । उन्होंने ही सिक्खों में बलिदान देने की प्रथा की नींव रखी, जिसे अन्य सिक्खों ने आगे बढ़ाया । इसी से उनके कार्यों को एक नयी दिशा मिली, जो उनके इतिहास के परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु था ।[32] वास्तविकता यह है कि जो दृढ़ता बढ़ते हुए सिक्ख सम्प्रदाय ने गुरू अर्जुनदेव के अधीन प्राप्त की थी, वही उन पर शाही कोष का कारण बन गयी ।[33]

परिस्थितिजन्य सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध अब शान्तिपूर्ण नहीं रहे थे, उनमें परिवर्तन आ रहा था जो स्वाभाविक था । यह तथ्य गुरू नानक के विचार और दार्शनिकता से भी सिद्ध होता है ।[34] गुरू नानक ने बाबर और लोदी दोनों का विरोध किया था । बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूँ था और इधर गुरू नानक के बाद गुरू अंगद गद्दी पर थे । जब 1540 ई0 में हुमायूँ शेरशाह से पराजित होकर काबुल की ओर जा रहा था, तो वह खंडूर में गुरू अंगद से मिला था । कुछ प्रतीक्षा करने पर वह क्रोधित हो गया और उसने दुर्भावना से तलवार निकाल ली थी । यदि हुमायूँ स्वयं दुखी न होता अथवा गुरूजी ने निडर सहनशीलता न दिखाई होती, तो सिक्खों की प्रथम शहीदी उसी समय और वहीं हो जाती ।

पृथिया अपने बुरे कार्यों के साथी सुलहीखां की मृत्यु के कारण बहुत निराश था, लेकिन शीघ्र ही उसने सुलावीखां के साथ गठजोड़ कर लिया । सुलाबीखां भी अमृतसर के

31. सुरजीत सिंह गांधी, हिस्ट्री ऑव द सिक्ख गुरूज़, पृ0– 245 ।
32. वी0एस0 छावड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग–1, पृ0– 164
33. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑव सिक्खीज़्म, पृ0– 46
34. गूरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक– बाबे के बाबर के दऊं,
आप करे परमेश्वर सऊं ।

नजदीक पठानों के साथ हुए एक संघर्ष में मारा गया । पृथिया ने इसके पीछे गुरू अर्जुनदेव का हाथ होना प्रदर्शित किया और इस सम्बन्ध में जहांगीर से शिकायत की । जहांगीर ने पृथिया को बुलवाया । बादशाह के इस निमंत्रण पर वह अत्यधिक प्रसन्न था, लेकिन अपनी यात्रा के दौरान मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गयी ।[35]

इस प्रकार गुरू के अनेक ईर्ष्यालु शत्रु तो स्वयं ही मृत्यु का ग्रास बनते गये, लेकिन वास्तविक संकट तब आया जब खुसरो ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । अब नबाबन्दी सम्प्रदाय को अवसर मिल गया । शेख बुखारी ने जहांगीर से झूठी शिकायत की कि गुरू अर्जुनदेव ने खुसरो की सहायता की है । इस पर जहांगीर ने बिना जांच करवाये ही गुरू अर्जुन देव को लाहौर बुलवाकर 2 लाख का अर्थ–दण्ड दे दिया । अर्थ–दण्ड से इन्कार करने पर उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और गुरूजी के परिवार को मुगल फौजदार मुर्तजाखां के हवाले कर दिया गया ।[36] गुरू जी को यातनाएँ दे–देकर मार देने का दण्ड देकर जहांगीर स्वयं काश्मीर की तरफ चला गया । गुरू अर्जुनदेव को अकथनीय शारीरिक कष्ट दिये गये । उनको लगातार कई घण्टों तक लोहे के गर्म तवे पर बिठाया गया, जलती हुई रेत उनके सिर पर डाली गई और लाहौर में मई मास की गर्मी ने उनके कष्टों को और भी भयंकर बना दिया । यहीं नहीं, उन्हें उबलते हुए पानी की देग में आलू की तरह उबाला गया और और फिर उन्हें रावी के ठण्डे पानी से स्नान करने को बाध्य किया गया, जहाँ उन्होंने 30 मई, सन् 1606 ई0 को[37] शरीर त्याग दिया । इतनी यातनाओं के बाबजूद गुरू अर्जुनदेव अपने विचारों से न डिगे और सी तक नहीं की ।

जब गुरूजी को कठोर यातनाएं दी जा रही थीं, तो साई मीयाँ मीर ने मध्यस्थता का प्रस्ताव रखा, जिसे गुरूजी ने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया और उसे ईश्वरीय इच्छा के आगे शान्त रहने को कहा।[38]

यद्यपि गुरू जी ने राजनीति के क्षेत्र में कभी भी स्वयं को महत्वाकांक्षायें प्रदर्शित

35. मौहम्मद अकबर, द पंजाब अण्डर द मुगल्स, पृ0– 191
36. प्रीतिम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव सिक्ख नेशन, पृ0– 149
37. वही, , पृ0– 153
38. तेरा भाना मीठा लागे ।

नहीं की थीं, फिर भी जहांगीर सिक्ख संगठन से पहले से ही शंकित था । वह उसे समाप्त कर देना चाहता था, क्योंकि उसे भय था कि कहीं यह धार्मिक आन्दोलन राजनैतिक रूप न ले ले । अपनी आत्मकथा में इस मुगल बादशाह ने अपनी शंकाओं को प्रगट करते हुए लिखा है—

"ब्यास नदी के तट पर स्थित गोइंदवाल में धार्मिक एवं साधुओं के पहनावे में अर्जुन नाम का एक हिन्दू रहता है । उसने बहुत से साधारण बुद्धि वाले साधुओं तथा अज्ञानी तथा मूर्ख निम्न जातीय मुसलमानों को भी अपने नियमों और ढंगों से आकर्षित कर लिया है। वह उच्च स्वर में उसकीपवित्रता की दुन्दुभी बजाते हैं । वे उसको गुरू कहते हैं । सभी दिशाओं से मूर्खों की भीड़ उसकी पूजा के लिए आ रही है और वे उसके प्रति अत्यन्त श्रद्धा भी प्रगट करते हैं । तीन या चार पीढियों से उसकी यह दुकान सुचारू रूप से चली आ रही है । बहुत समय से मेरे मस्तिष्क में यह बात आ रही है कि या तो इस मिथ्या वाणिज्य—केन्द्र को बन्द कर दूँ या फिर इसे इस्लामी लोगों की सभा में सम्मिलित कर लूँ ।"[39]

इस प्रकार सिक्ख धर्म की बढ़ती हुई शक्ति ही, जिसे जहांगीर कभी भी सहन नहीं कर सकता था चाहे वह कितनी ही शान्तिमय क्यों न हो, गुरू अर्जुनदेव के शहीद होने का कारण बन गयी ।

सिक्खधर्म के विरुद्ध तो जहांगीर पहले से ही विचार बना चुका था, गुरूजी को दण्ड देने के लिए राजद्रोह का आरोप तो एक बहानामात्र था । मुगल बादशाह का यह कथन कि "उसको इस्लाम में मिला लूँ यह सिद्ध करता है कि गुरू के कार्यो ने पहले से ही सम्राट को सिक्ख—विरोधी बना दिया था । यदि गुरू किसी प्रकार से खुसरों के विद्रोह में सहायक थे भी, तो भी यह उनकी मृत्यु का मुख्य कारण नहीं था, यद्यपि यह उद्देश्य पूर्ति का एक अच्छा अवसर था ।[40] वास्तव में गुरू अर्जुन जहाँगीर की नयी धार्मिक नीति का शिकार हुए, क्योंकि नये बादशाह के व्यक्तित्व में पूर्ववर्ती बादशाह से भिन्न अनेक तत्व विद्यमान थे ।

39. रौजर्स एण्ड बिवरीज, वही, भाग—1, पृ0— 72,
40. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग—1, पृ0—170

जहाँगीर अपने पिता की भाँति उदार नहीं था । जब वह सिंहासन पर बैठा तो उसने अपने सहायकों से इस्लाम—धर्म की रक्षा का वायदा किया कि वह अपने राज्य में किसी भी अन्य शक्तिशाली धर्म को पनपने की आज्ञा नहीं देगा, क्योंकि वह विस्तृत होकर शान्ति में बाधा डाल सकता है । वह मुस्लिम लोगों द्वारा धर्म—परिवर्तन भी सहन नहीं कर सकता था ।[41] इन्हीं विचारों ने जहांगीर को सिक्ख—विरोधी—कार्यो के लिए प्रेरित किया ।

---

41. तेजा सिंह एण्ड गण्डा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव द सिक्खस्, भाग—1, ए0 34

(4) गुरू अर्जुनदेव के बलिदान का प्रभाव :

गुरू अर्जुन देव की वीरगति सिक्ख–इतिहास में मील का पत्थर है । उनकी शहीदी सिक्ख–जाति की प्रगति में एक नये मोड़ को प्रदर्शित करती है । उस समय से, जबकि संघर्ष शुरू हुआ, उसने सुधारक–धार्मिक–आन्दोलन के आन्तरिक स्वरूप को बदल दिया।[42] अपनी मृत्यु से पूर्व गुरू अर्जुनदेव ने अपने पुत्र हरगोविन्द के लिए सिक्खों के हाथ सन्देश भेजा कि "मैं अपने जीवन के उद्देश्यों को प्रभावित करने में सफल रहा हूँ । मेरे पुत्र हरगोविन्द के पास जाओ और उसे मेरी तरफ से यथेष्ट आश्वासन दो और उसे रोने तथा विलाप में न लगाकर ईश्वरीय प्रशंसा के गीत गाने की आज्ञा दो । शस्त्रों से सुसज्जित होकर उसे गद्दी पर बैठना चाहिए और योग्यतानुसार उसे एक सेना तैयार करने दो । प्राचीन रीति के अनुसार अपने माथे पर गुरूपद का चिह्न स्वीकार करे और सिक्खों से हमेशा नम्र व्यवहार करें ।"[43]

गुरू अर्जुनदेव जी के प्राणोत्सर्ग के पश्चात् शिष्य रूपी अनुयायी जो मुस्लिम शासकों की आतातायी क्रियाओं से त्रस्त थे, उनके विशाल समूह को समाज के त्रिकोणीय सामाजिक–सांस्कृतिक संघर्ष से बचाने व उसको एक गम्भीर व निष्कपट नेतृत्व के लिए पूर्व योजना की आवश्यकता थी। यहीं से एक क्रान्ति के बीज पड़ गये, जिसने सिक्खों के चरित्र को साधारण–सन्तों से सन्त–सैनिकों में परिवर्तित कर दिया । जैसे जहाँगीर एक तीर से दो शिकार करना चाहता था, उसी प्रकार सिक्खों ने भी वही नीति अपनाने का फैसला किया । अब वे उतने ही धार्मिक थे जितने की राजनैतिक, उतने ही साधु थे जितने कि सैनिक । वे केवल इसी नीति से बच सकते थे ।[44] गुरू अर्जुनदेव की शहादत के बाद सिक्खों का इतिहास सन्तों का इतिहास नहीं बल्कि सन्त–सैनिकों का इतिहास है, मीरी और पीरी का इतिहास है ।

गुरू अर्जुनदेव की शहादत ने शान्तिमय सिक्खों के हृदय को उत्तेजित कर

---

42. ट्रम्प, द आदिग्रन्थ, पृ0— 82
43. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–3, , पृ0— 49
44. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव सिक्ख नेशन, पृ0— 151

दिया । इसने उस प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया, जिसने बाद में साधारण 'बाल काटने वाले नाईयों' एवं 'पानी भरने वाले भिश्तियों' को उस समय के महान् सैनिकों तथा सेनापतियों में बदल दिया ।[45] अब सिक्खों में भी बदला लेने की भावना प्रज्ज्वलित हो गई और तलवार एवं कुरूक्षेत्र की कला सीखने के लिए वे लालायित हो गये ।[46]

गुरू अर्जुनदेव की अन्यायपूर्ण मृत्यु सिक्ख–राष्ट्र के इतिहास का परिवर्तनशील केन्द्र बिन्दु है, क्योंकि इसने सिक्खों की धार्मिक भावनाओं को उत्तेजित कर दिया । इस उपरोक्त घटना ने मुसलमान शक्ति के प्रति घृणा के बीज बो दिये थे, जिन्होंने गुरू नानक के विश्वासपात्र अनुयायियों के हृदयों में गहरी जड़ें पकड़ ली थीं ।[47]

गुरू अर्जुनदेव ने पृथ्वी की महानतम शक्ति द्वारा की गई गलतियों का विरोध करके साहस और वीरता का उदाहरण पेश किया और वो बीज बोए जिन्होंने कुछ समय में फल प्राप्त किये ।[48]

उस समय हरगोविन्द केवल 11 वर्ष के थे, जब वे गुरू मनोनीत[49] हुए। इसके साथ ही सिक्ख इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ । सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध अब अधिक कटु और और संघर्षमय बन गये । छोटी आयु में ही गुरू हरगोविन्द इस बात को अनुभव करने लगे थे कि अब समय बदल गया है और सिक्खों का अस्तित्व बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि सन्तों को सन्त–सैनिकों में बदल दिया जाये । उनकी यह नीति ही सिक्ख–मुगल–संघर्ष का कारण बनी, क्योंकि अस्तित्व की रक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक था । किसी सिक्ख गुरू की मुगल बादशाह द्वारा प्रदत्त दण्डस्वरूप यह पहली शहीदी थी ।[50] इसने एक प्रतिक्रिया को उत्पन्न कर दिया और सौहार्दपूर्ण सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध बड़े–बड़े संघर्षो में परिवर्तित हो गये ।

---

45. प्रीतिम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव सिक्ख नेशन, पृ0– 151
46. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑव द सिक्ख रिलीजन, भाग–1, पृ0–
47. लतीफ, हिस्ट्री ऑव द पंजाब, पृ0– 254
48. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑव सिक्ख गुरूज, भाग–1, पृ0– 104
49. गुरू अर्जुनदेव की मृत्यु के बाद वे सिक्खों के छठे गुरू नियुक्त हुए ।
50. प्रीतिम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव सिक्ख नेशन, पृ0– 152

कालान्तर में मुगलों की शक्ति पतनोन्मुख हो जाने के कारण सिक्ख उन्नति करते गये और पंजाब को स्वतंत्र कराने में सफल हुए ।

गुरू हरगोविन्द का जन्म 14 जून सन् 1595 ई0 को[51] गांव वडाली, जिला–अमृतसर में गुरू अर्जुनदेव के घर हुआ था । इनकी माता गंगा थीं । आपके जन्म पर बहुत खुशियाँ मनाई गयीं, लेकिन पृथिया और उसकी पत्नी करमो का मन ईर्ष्या से जलने लगा । पृथिया अभी तक यह सोचे हुए था कि गुरू अर्जुनदेव निःसन्तान हैं, अतः उसका लड़का ही गुरूगद्दी पर बैठेगा । गुरू हरगोविन्द के जन्म से उसकी इस आशा पर भी पानी फिर गया । अब उसने बालक को खत्म करने के प्रयत्न किये । उसने बालक हरगोविन्द के विरुद्ध प्राणघातक षड्यंत्र किये, लेकिन हरगोविन्द पर उनका कोई प्रभाव न हुआ ।

जब हरगोविन्द कुछ बड़े हुए, तो पिता गुरू अर्जुनदेव ने उनकी शिक्षा–दीक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया । उनको बाबा बुड्ढा जी ने शिक्षा दी । पढ़ने–लिखने के अलावा उन्होंने घुड़सवारी, तीरंदाजी, तलवारबाजी, तैरना, कुश्ती, शिकार तथा और कई प्रकार की शौर्यपूर्ण कलाएँ भी सीख लीं तथा वह एक आदर्श वीर सन्त–सिपाही बन गये ।[52]

अपने पिता की शहीदी के पश्चात् वे सन् 1606 ई0 में गुरू गद्दी पर आसीन हुए। अपने उत्तराधिकार–समारोह के समय उन्होंने सैनिक वेशभूषा धारण की और गुरूगद्दी पर बैठते समय दो तलवारें धारण कीं.... मीरी और पीरी ।[53] उन्होंने घोषणा की कि एक तलवार आध्यात्मिक अभिषेक का प्रतीक है और दूसरी भौतिक अभिषेक का । उन्होंने कहा कि मैं अपनी पगड़ी राजसी ठाट–बाट से बांधूँगा ।[54]

गुरू हरगोविन्द ने अपने मसन्दों को आदेश दिया कि वे अब अच्छी नस्ल के घोड़े तथा अस्त्र–शस्त्र लायें । उन्होंने सिक्खों को भी आदेश दिया कि जो सिक्ख अस्त्र या घोड़ें भेंट करेगा, गुरूजी उससे प्रसन्न होंगे। उन्होंने अमृतसर के हरमन्दिर के ठीक सोने अकाल– तख़्त[55]

---

51. प्रीतिम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑव सिक्ख नेशन, पृ0– 153
52. प्रि0 तेजा सिंह, सिक्ख इतिहास दीआं कुछ झाकियाँ, पृ0– 27
53. मालकम, स्कैच ऑव द सिक्खस, पृ0– 35
54. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 2
55. आर्थर, द सिक्खस्, पृ0– 174।

की स्थापना की । कई लोग इसे अकाल—बुंगा भी कहते हैं । जब तक गुरूजी हरमन्दिर में थे, वे एक साधु की तरह थे और अकाल—तख़्त में वे एक राजा की भाँति थे ।[56]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि परिस्थितिवश ही सिक्ख संगठन को आध्यात्मिक—स्वरूप त्यागकर सैन्य स्वरूप को अपनाना पड़ा, जिसके प्रतीक उनके छठे गुरू हरगोविन्द थे । परन्तु एक तथ्य स्पष्ट है कि प्रवृत्ति एवं संगठनात्मक ढाँचे के इस परिवर्तन के पीछे किसी भी गुरू की कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा न थी । केवल सिक्ख—मुगल—संघर्ष से उत्पन्न परिस्थितियों ने ही इस परिवर्तन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया, सिक्खधर्म की प्रारम्भिक प्रकृति को ही बदल दिया और इस प्रकार उस संघर्ष का प्रारम्भ हुआ जिसने अपने अनवरत प्रहारों द्वारा उत्तरी—भारतवर्ष में मुगल—सत्ता को ही खोखला कर दिया । मुगल बादशाह अकबर को मानवीय संवेदनाओं एवं धार्मिक आवश्यकताओं की पहचान थी, अतः उसने धार्मिक विषमताओं को कभी भी संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखा और इसी कारण वह मुगल सत्ता को दृढ़ता के साथ सफलतापूर्वक स्थापित भी कर सका था। परन्तु मुगल सिंहासन पर जहांगीर का आगमन नवीन प्रवृत्तियों का उदय था, जिसने पूर्ववर्ती बादशाह की नीति को त्यागकर न केवल संघर्ष की स्थिति ही उत्पन्न कर दी, बल्कि स्वयं मुगल साम्राज्य की जड़ों को भी दुर्बल करना प्रारम्भ कर दिया ।

—00—

---

56. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑव द सिक्ख रिलीजन, भाग—1, पृ0—27

तृतीय—अध्याय

।। सिक्ख—मुगल—संघर्ष (1607 से1675 तक) ।।

(1) प्रथम संघर्ष : (1607–1627) :

मुगल बादशाह अकबर का परवर्ती काल सिक्खों एवं मुगलों के संघर्ष का काल रहा है, जिसका प्रारम्भ इस महान मुगल के उत्तराधिकारियों ने अनुदारपूर्ण असहिष्णुता की नीति के रूप में किया था । गुरू अर्जुनदेव के बलिदान के पश्चात् सिक्खों का नेतृत्व षष्ठ गुरू हरगोविन्द के हाथों में आ गया । परीक्षा की इस कठिन घड़ी में सिक्ख पंथ के छठे गुरू हरगोविन्द सिंह जी ने पंथ के ''सच्चे बादशाह'' के रूप में उत्तराधिकारी बनकर अपने अस्तित्व की रक्षा का प्रण लिया । गुरू अर्जुनदेव के बलिदान से सिक्खों में जागृति आ गई । अब उन्हें यथार्थ ज्ञान हो गया कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हें शक्ति एकत्रित करनी ही होगी। अतः सिक्खों में उत्पन्न इसी भावना के फलस्वरूप उनमें हिंसात्मक प्रवृत्ति और शक्ति संगठन का आरम्भ हुआ ।

षष्ठ गुरू हरगोविन्द को जब मुगल सत्ता द्वारा जनता पर किये जा रहे अत्याचारों का पता चला, तब उन्होंने मुगल दमनचक्र से त्रस्त जनता को मुक्ति दिलाने के लिए प्रयास करने प्रारम्भ किये । गुरू अर्जुनदेव ने अपनी मृत्यु से पूर्व हरगोविन्द को जो संदेश भेजा था, उसमें एक सैनिक दल रखने के लिए कहा था ।[1] अतः उन्होंने अपने पिता के बलिदान के पश्चात् समयकी आवश्यकता को देखते हुए एक सैनिक दल संगठित करना आरम्भ कर दिया । आत्मरक्षा की दृष्टि से उन्होंने अमृतसर के समीप लोहगढ़ जिले का निर्माण किया और अमृतसर की किलेबन्दी की । इस तरह अमृतसर सिक्खों का प्रथम सैनिक केन्द्र बन गया। अमृतसर में सिक्खों में घुड़सवारी, तीरंदाजी और कुश्तियों की प्रतियोगिताओं के आयोजन के कारण यह स्थान लोकप्रिय बनने लगा ।

सिक्ख संगठन में सैनिक प्रवृत्ति के समावेश के कारण इसमें रुचि रखने वाले लोग गुरू हरगोविन्द के संरक्षण में संगठित होने लगे । बहुत से बेरोजगार लोग भी गुरूजी के पास एकत्र हो गये ।[2] इस सैनिक प्रवृत्ति को समाविष्ट करने का बाबा बुड्ढा तथा माता गंगा ने विरोध किया, किन्तु गुरू जी ने उन्हें यह कहकर सन्तुष्ट कर दिया कि केवल सैनिक नीति के अनुसरण से ही लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है ।

1. नरिन्दर पाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0–27
2. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, पृ0– 4–5

गुरू हरगोविन्द अब 'सच्चा बादशाह' के नाम से लोक प्रिय होने लगे थे । इस सैनिक प्रवृत्ति के कारण उनके कार्य—कलापों में स्वाभाविक परिवर्तन आया, जिसके कारण वे शस्त्रों और युद्ध प्रिय कार्यों की ओर आकर्षित हुए । उनका मत था कि धर्म—प्रचार—कार्यों के अतिरिक्त अस्त्र—शस्त्र तथा अन्य सैनिक एवं सांसारिक मनोरंजन का कार्य भी साथ—साथ होगा ।[3]

धर्म में सैनिक तत्वों का समावेश मुगल बादशाह को रुचिकर न लगा । जहाँगीर ने सिक्खों के प्रति दमन—कार्य पुनः प्रारम्भ किये । बादशाह ने गुरू हरगोविन्द को दिल्ली बुलाया और कैद कर ग्वालियर के किले में बंद कर दिया ।[4] इसी किले में अन्य राजनैतिक कैदी भी रखे जाते थे । गुरू की नवीन सैनिक नीति मुगल साम्राज्य के लिए चुनौती समझी गई थी । गुरू हरगोविन्द को गिरफ्तार करने के अनेकों कारण थे, किन्तु इसका मुख्य व वास्तविक कारण उनकी नवीन सैनिक नीति ही था । इसी नीति के अधीन उन्होंने सिक्खों को सशस्त्र होने का आदेश दिया था । उन्होंने सुचारू रूप से एक सिक्ख सेना की स्थापना की, जो आवश्यकता पड़ने पर तैयार रहती थी। मुगल बादशाह जहाँगीर, जो गुरू अर्जुनदेव की सर्वप्रियता एवं शान्तिप्रियता को सहन न करता हुआ उनको शहीद कर सकता था, गुरू हरगोविन्द की सैनिक नीति को किस प्रकार शान्त भाव से सहन कर सकता था, अतः जहाँगीर ने गुरूजी को उनकी नई सैनिक नीति के कारण बन्दी बना लिया ।[5] सिक्ख अब तक शान्त व आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित थे, परन्तु गुरू हरगोविन्द ने मीरी व पीरी का नया सिद्धान्त स्थापित किया और परिणामस्वरूप सिक्ख एक सैनिक—समुदाय में बदल गये। इनकी सैनिक तैयारी ही मुगल प्रशासन को शंकित करने के लिए पर्याप्त थी और मुगलों से संघर्ष का कारण बन गयी।[6] राजनैतिक दृष्टिकोण से इस नीति—परिवर्तन के दूरगामी परिणाम हुए । पहले तो मुगल बादशाह गुरूओं के पास दर्शनार्थ आते रहे थे,जबकि वर्तमान बादशाह ने गुरूजी को ही कैद कर लिया था ।[7]

'तुज्क—ए—जहाँगीरी' में बादशाह का स्वयं का कथन परोक्ष व अपरोक्षरूप से

3. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 4
4. वही, पृ0— 21
5. दबिस्तां, भाग—2, पृ0— 74
6. पेन, प शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0— 42
7. भाई गुरूदास, वार 26

यह सिद्ध करता है कि गुरू अर्जुन को मृत्यु—दण्ड जैसे गम्भीर विषय पर भी उसने दूसरों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया और यह भी बिल्कुल असम्भव नहीं कि उन्हीं व्यक्तियों की कुटिलतापूर्ण चालों ने गुरू हरगोविन्द को बन्दी के रूप में ग्वालियर के किले में पहुँचाया । ऐतिहासिक तथ्यों से भी यही बात सिद्ध होती है, जैसे कि सन् 1607 और 1608 ई0 के आरम्भ में दोनों बार काबुल जाते समय जहाँगीर लाहौर रुका था और सम्भव है कि इन्हीं अवसरों पर हरगोविन्द के शत्रुओं ने गुरू के विरुद्ध बादशाह के समक्ष प्रतिनिधित्व किया हो ।[8]

जब सिक्खों को पता चला कि उनका गुरू ग्वालियर में कैद कर लिया गया है, तो वे अत्यन्त दुखी हुए । वे जत्थे बनाकर ग्वालियर जाते, किन्तु उन्हें गुरूजी से मुलाकात करने की आज्ञा न थी । वे किले की दीवारों को चूमते और वापिस चले जाते । जितने समय तक गुरू हरगोविन्द ग्वालियर में कैद रहे, यह किला सिक्खों के लिए तीर्थस्थान बन गया ।[9] सिक्खों की अपने गुरू के प्रति असीम श्रद्धा देखकर बादशाह जहांगीर भी प्रभावित होने से बच न सका । इसके अतिरिक्त मीआं मीर तथा एक मुगल अधिकारी वजीरखान ने भी गुरूजी को छुड़वाने के लिए जहांगीर के पास संस्तुति की साम्राज्ञी नूरजहाँ भी गुरूजी के व्यकितत्व से बहुत प्रभावित थी, अतः उसने भी बादशाह को गुरू हरगोविन्द की रिहाई के लिए प्रेरित किया । अन्ततः बादशाह ने गुरूजी को रिहा करने का आदेश दे दिया ।[10] जब यह आदेश ग्वालियर पहुँचा, तो गुरूजी ने तब तक रिहा होने से इन्कार कर दिया जब तक कि उनके साथ ग्वालियर कारागार में बन्दी 52 राजे भी नहीं छोड़ दिये जाते ।[11] पहले जहाँगीर ने यह शर्त अस्वीकार कर दी, लेकिन बाद में उसे मानना पडा और इसप्रकार गुरूजी ने अपने साथ ही उन राजाओं को भी कैद से मुक्ति दिलाई । यही कारण है कि गुरूजी को बंदी छोड़ कहा जाता है ।[12] अब सिक्खों के प्रति जहांगीर का रवैया पूर्णतः बदल चुका था ।

---

8. बैनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, पृ0— 150.
9. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 157
10. कृपया परिशिष्ट देखिए— (ग)
11. तेजा सिंह एण्ड गंज सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स्, भाग—1, पृ0— 40
12. मैकमिलन, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 27

    "दुर्ग में एक स्तम्भ बन्दीछोड के नाम से पुकारा जाता है, सिक्खों और मुस्लिमों के लिए यह पूजा का स्थान है। मुस्लिम वीरवार को यहाँ दिया जलाते हैं और सिक्ख विशेष अवसरों पर यहाँ आते हैं । इस स्थान पर बैठ कर गुरूजी भक्ति करते थे। **यह एक तालाब के किनारे है ।**"

मुगल बादशाह ने सिक्खों के प्रति अब मित्रतापूर्ण रवैया अपनाया । गुरू और बादशाह में जिस मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत हुई, वह जहाँगीर की मृत्यु पर्यन्त स्थापित रही। शाहजहाँ का शासन आरम्भ होने तक, कम या अधिक, मुगल सरकार के साथ गुरू हरगोविन्द के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण, मैत्रीपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण ही रहे । व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस मित्रता से गुरूजी को बहुत लाभ हुआ, क्योंकि इससे वे अपनी सैनिक तैयारियाँ जारी रख सकने में सफल रहे । वे किसी भी आकस्मिक संकट के समय रक्षार्थ हेतु एक सेना रखना चाहते थे, चाहे वह छोटी ही क्यों न हो ।[13] इस इच्छा को कार्यरूप देने के लिए मित्रता समय की मांग थी, क्योंकि सिक्ख सैनिक दृष्टि से अभी बाल्यावस्था में ही थे । गुरूजी ने समय व्यर्थ नहीं गंवाया और सिक्ख सेना को सफल बनाने में लग गये । इसके अतिरिक्त उन्होंने धर्म–प्रचार के लिए भी समय निकाल लिया और दूर–दूर तक प्रचार यात्रायें की ।[14]

उन्होंने पंजाब में भी अमृतसर, करतारपुर, मुकेरियाँ और हरगोविन्दपुर में सिक्ख–धर्म का प्रचार किया । यहाँ के ऐतिहासिक गुरूद्वारे इस बात की पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उत्तर प्रदेश में भी नानकमत्ता में गुरूद्वारे को जोगियों के कुप्रभाव से बचाया । वे कश्मीर भी गये और वहाँ सिक्ख–धर्म का प्रचार किया । कश्मीर जाते हुए वे स्याल कोट, मलोटिया, बजीराबाद, मीरपुर, भीमबेर और बेहराम आदि से गुजरे और इन स्थानों पर भी उन्होंने सिक्खधर्म का प्रचार किया ।[15] श्रीनगर में कुछ दिन ठहरने के बाद वे बारामूला, ऊरी, मुज्जफराबाद और गुजरात की तरफ भी गये ।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि गुरूजी ने सिक्ख–धर्म के प्रचार के लिए कोई भी कसर कसर उठा न रखी थी और उन्होंने एक उत्कृष्ट संगठनकर्ता व धर्म–प्रचारक के रूप में अपनी छॉप छोड़ी । जहाँगीर के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने में वे काफी हद तक सफल रहे । इन्होंने सामयिक परिस्थितियों के वशीभूत शांत पंथ को युयुत्सु पंथ में संरचित व परिवर्तित किया तथा पंथ की प्रतिदिन की कर्मकाण्डीय परम्पराओं में अल्प मात्रा में

---

13. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग–2, पृ0– 14.
14. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 158
15. वही, पृ0– 159

परिवर्तन करके पंथ की उदार व आध्यात्मिक अस्मिता को साहसिक परम्पराओं के रूप में परिमार्जित किया ।

परन्तु गुरूजी की स्थिति कठिनाईयों से मुक्त नहीं हुई थी, क्योंकि पृथिया का पुत्र मेहरबान अभी भी गुरू—विरोधी कार्यो में सक्रिय था । इसके अतिरिक्त यदा—कदा कुछ ऐसी घटनाएं भी घटीं, जो गुरूजी तथा लाहौर के मुगल अधिकारियों के बीच झगड़े का कारण बनीं । इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना लाहौर के काजी रूस्तमखाँ की लड़की कौलां के सम्बन्ध में है । साई मीआं मीर के प्रभाव में आकर कोलां बाल्यकाल से ही सिक्ख धर्म में प्रभावित थी । जब वह बड़ी हुई तो खुलेआम सिक्खों की गुरूवाणी का जाप करती थी । यह एक काजी के लिए असहनीय था कि उसकी अपनी बेटी ही काफिरों के भजन का गायन करे। बहुत समझाने—बुझाने पर भी जब काम न चला, तो काजी ने उसे मरवा डालने की योजना बनाई । जब कोलां को इस षड्यन्त्र का पता चला, तो वह साई मीआं मीर के साथ घर से भाग कर अमृतसर गुरू हरगोविन्द के पास आ गई । गुरूजी ने उसे शरण दी । इससे क्रोधित होकर काजी ने बादशाह जहांगीर के पास शिकायत की, लेकिन बादशाह ने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया और मामला स्पष्ट रूप से खत्म हो गया ।[16] जहांगीर ने हस्तक्षेप इसलिए नहीं किया, क्योंकि साई मीआं मीर इस मामले में फंसे हुए थे और जहांगीर उनका बहुत ही आदर करता था । इधर मीआं मीर गुरू—धर के भी अनन्य भक्त थे ।

साई मीआं मीर के कारण सिक्ख गुरू हरगोविन्द और मुगल बादशाह जहांगीर में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे ।[17] इस प्रकार 17वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षो में, केवल थोड़े से अन्तराल के विरोधों एवं संघर्षो की स्थिति के अतिरिक्त, सिक्ख संगठन एवं मुगल प्रशासन के मध्य सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण ही रहे । शान्ति के इन वर्षो में इस धार्मिक—संगठन को सैन्य—संगठन में परिवर्तित होने के पर्याप्त अवसर मिले और उन्होंने इन अवसरों का लाभ भी उठाया। परन्तु मुगल प्रशासन के कार्यो की विवेचना करने पर यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि या तो 'राज्य' इतना अल्पबुद्धि वाला था अथवा इतना आलसी और निर्बल था, जो

16. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 43—49
17. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग—2, पृ0— 20.

इस भयानक दल (सिक्खों) के शक्ति—विस्तार को न रोक सका ।[18]

परन्तु यह सत्य है कि गुरू की दूरदर्शितापूर्ण नीति के कारण सिक्ख समुदाय ने शान्ति के इन वर्षों का भरपूर उपयोग किया । मुगल बादशाह एवं सिक्ख गुरू के मध्य इस मित्रता का प्रारम्भ ग्वालियर से गुरू की मुक्ति के रूप में हुआ था, जबकि जहांगीर सिक्ख अनुयायियों की अपने गुरू के प्रति श्रद्धा देखकर प्रभावित हो गया था । मित्रता का यह युग जहांगीर की सन् 1627 ई0 में मृत्यु[19] के साथ ही समाप्त हो गया ।

18. ट्रम्प, द आदि ग्रन्थ, पृ0— 84
19. गलेडविन के अनुसार जहांगीर की मृत्यु 28 अक्टूबर 1627 ई0 को हुई थी । पृ0— 91

****

(2) द्वितीय संघर्ष (1628—1657) :

मुगल बादशाह जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र खुर्रम[20] 'अब्दुल मुज्जफर शहाबुद्दीन मुहम्मद साहिब किरन—ए—सानी' की उपाधि धारण करके मुगल सिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित हुआ ।[21] शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही सिक्ख—मुगल —सम्बन्धों में एक स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ । सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध अब परस्पर विरोध का रूप धारण कर गये और इनका स्वरूप अब आपसी युद्धों ने ले लिया ।

जहाँगीर के काल में ही गुरू हरगोंविन्द के शत्रुओं ने जब देखा कि गुरू और बादशाह के सम्बन्ध परस्पर मित्रतापूर्ण हैं, तो वे निराश होकर अजमेर के गवर्नर शाहजादा खुर्रम के पास पहुँचे और सिक्खों के प्रति उसके विचारों को दूषित करने में सफल रहे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अकबर के समय में वे जहाँगीर के कान भरने में सफल रहे थे । जब खुर्रम अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् मुगल सिंहासन पर आसीन हुआ, तो उसके मन में गुरूजी के विरुद्ध पहले से ही कई बातें भरी हुई थी ।[22] इसके अतिरिक्त शाहजहाँ स्वयं कट्टर सुन्नी मुसलमान था और धर्म का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड देता था। वह नये मुसलमानों का विशेष ध्यान रखता था । उन्हें सुविधाएँ पहुँचाने के लिए उसने एक नया अधिकारी नियुक्त कर रखा था और उसने यह आदेश दे रखा था कि यदि कोई अपना धर्म छोड़ेगा, तो उसे दण्ड दिया जायेगा ।[23]

उसने उन मन्दिरों को भी गिरवा दिया, जो अभी बन रहे थे ।[24] यही नहीं, अब उसने आज्ञा दी कि गुरू अर्जुनदेव की बावली को भी गिरा दिया जाये और उस स्थान पर एक मस्जिद बना दी जाये । यह बावली लाहौर के डब्बी बाजार में बनी हुई थी ।

इस नीति से सिक्खों में क्षोभ व क्रोध की लहर दौड़ गई। अब सिक्ख इस प्रकार

---

20. बनारसी प्रसाद सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहाँ, पृ0— 2, "खुर्रम का जन्म 5 जनवरी 1542 ई0 को हुआ था ।"
21. जूलियट एण्ड हाउसन्, बादशाहनामा, वही भाग—7, पृ0— 5, 'शाहजहां 6 फरवरी 1628 ई0 को गद्दी पर बैठा ।"
22. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 76
23. श्रीराम शर्मा, मुगल गवर्नमेंट एण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ0— 179
24. श्रीराम शर्मा, द रिलीजंस पॉलिसी ऑफ द मुगल इम्परर्स, पृ0— 86

इस प्रकार का अत्याचार सहन करने को तैयार न थे । इस प्रकार मुगल बादशाह शाहजहां और गुरू हर गोविन्द सिंह में उपरोक्त कारणों से टक्कर होना स्वाभाविक था । यहीं से स्थायी रूप से सिक्ख–मुगल–संघर्षो का सूत्रपात हुआ । इस संघर्ष का मुख्य कारण गुरूजी की नवीन सैनिक नीति थी, जिसने मुगल बादशाह को उत्तेजित किया। गुरूजी अकाल–तख्त पर बैठकर बादशाह की तरह सिक्खों की शिकायतें सुनते और निर्णय कियाकरते थे । उनकी सैनिक और राजनैतिक शक्ति बहुत बढ़ गई थी । सिक्ख सेना अब पूरी तरह से तैयार हो चुकी थी । सिक्खों की इस सेना में मुगल राज्य के विरोधी लोग भी शामिल थे । यही नहीं, मुगल सेना से भागे हुए सैनिक भी गुरूजी की सेवा में भर्ती किये जाते थे ।[25] जेसलमेर के शरणार्थी राजा रामप्रताप ने गुरू हरगोविन्द के पास शरण ली । मुगल–सेना से निकाले हुए मीरखान और ख्वाजासरा ने भी गुरूजी की सेना में नौकरी कर ली। इसके अतिरिक्त अनवर और हसनखाँ नामक पठान अमीरों ने सरकारी नौकरी छोड़कर गुरूजी की शरण ली । ये घटनाएँ मुगल बादशाह शाहजहाँ के मन में सन्देह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थीं । वह इन कार्य–विधियों को मुगल शासन के लिए खतरनाक समझता था, अतः उसने सिक्खों को कुचल डालने का निश्चय किया ।

मुगल बादशाह ने पहला दोष यह लगाया कि गुरू हरगोविन्द मुगल फौज से भागे हुए सैनिकों एवं विद्रोहियों को भर्ती कर रहे हैं ।[26] यह दोष काफी हद तक सत्य था, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से गुरूजी शरण आये व्यक्ति को कैसे मोड़ सकते थे । इसके अतिरिक्त लाहौर के काजी की लड़की का मामला भी फिर से उठाया गया । इस प्रकार संघर्ष की पृष्ठभूमि बन चुकी थी और अब किसी तात्कालिक कारण की आवश्यकता थी, जो शीघ्र ही बन गया ।

सन् 1628 ई0 में[27] अमृतसर के निकट शाहजहां एक दिन शिकार खेल रहा था। संयोगवश गुरू हरगोविन्द भी उसी इलाके में ही शिकार खेल रहे थे । शाहजहां का एक विशेष बाज, जो उसे ईरान के बादशाह से भेंट स्वरूप मिला था, मार्ग भूल कर घबराया हुआ

---

25. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 76
26. नरिन्दरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0– 30
27. जे0एन0 सरकार, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ0– 156

गुरू हरगोविन्द के डेरे में पहुँच गया[28], जैसे कि आश्रय की खोज में हो । बादशाह के सैनिक बाज को ढूँढ़ते–ढूँढ़ते सिक्खों के डेरे में आ पहुँचे और बाज वापिस करने को कहा, जिस पर उन्होंने इन्कार कर दिया । इस पर उन लोगों में जलों के स्थान पर आपस में झड़प हो गई, जिसमें मुगलों के कुछ लोग मारे गये ।[29]

सिक्खों से पराजित होकर मुगल सैनिकों ने शाहजहाँ के पास जाकर शिकायत की । बादशाह ने कुछ और सेना सिक्खों के विरुद्ध भेजी, जो संगराना के मैदान में पराजित होकर वापिस लौट गई । इससे मुगल बादशाह बहुत क्रोधित हो उठा । उसने मुखलिस खान के नेतृत्व में एक ओर सेना सिक्खों के विरुद्ध भेजी । इसमें शम्सखान और अनवरखान भी थे ।[30] अमृतसर के पास हुए इस युद्ध में मुगल सेना पराजित हुई और उसके सभी अधिकारी मारे गये । मुखलिस खान को गुरूजी ने स्वयं मार गिराया । इसमें गुरूजी पूर्णरूप से विजयी हुए । सिक्ख इतिहासकारों ने इसका विस्तार से वर्णन किया है ।[31] यह सिक्खों और मुगलों में पहला बड़ा युद्ध था, जोकि पंजाब में लड़ा गया ।[32] इस युद्ध से सिक्खों की शक्ति बहुत बढ़ गई और बहुत से लोग सिक्खों के झण्डे के नीचे आ एकत्र हुए। वे सोचने लगे कि केवल गुरूजी ही बादशाह से टक्कर ले सकते हैं ।[33]

यहाँ से अब गुरूजी करतारपुर चले गये ।[34] वहाँ से व्यास पार करके एक पुराने गांव में पहुँचे, जहाँ उन्होंने एक अच्छा स्थान जानकर एक नगर की नींव रखनी शुरू की । वहाँ के जमींदार तथा चौधरी भगवानदास ने कठिनाई उत्पन्न कर दी । इससे झगड़ा हो गया तथा जमींदार मारागया । उसके पुत्र रत्न चन्द ने गुरू के शत्रु पक्ष से मिलकर जालन्धर के सूबेदार से शिकायत कर दी । उसने गुरूजी के विरुद्ध एक सेना भेजी । सिक्खों ने इस

---

28. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–1, पृ0– 133.
29. जे0एन0 सरकार, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ0– 156
30. नरिन्दरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0– 30
31. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 82–83
32. लतीफ, हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0– 256
33. जे0एन0 सरकार, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ0– 156
34. दबिस्तां, भाग–2, पृ0– 275

सेना को मार भगाया तथा नगर—स्थापना का कार्य विधिवत् चलता रहा ।[35] यहाँ गुरूजी ने अपने मुसलमान सैनिकों के लिए एक मस्जिद भी बनवाई ।[36]

इसके पश्चात् कुछ दिनों तक दोनों पक्ष शान्त रहे, लेकिन शीघ्र ही यह शान्ति भंग हो गई । सख्तमल और ताराचन्द नामक दो व्यक्ति काबुल से अत्यन्त उच्चकोटि के घोड़े ला रहे थे, जोकि अत्यन्त सुन्दर और तेज चाल के थे । जब वे लाहौर पहुँचे, तो मुगल अधिकारियों द्वारा घोड़े छीन लिये गये । इस घटना की सिक्ख—प्रमाण बड़ी रोचक कथा बताते हैं, कि किस प्रकार विधिचन्द ने, जोकि पहले एक प्रसिद्ध डाकू था और अब गुरू का शिष्य था, एक के बाद एक दोनों घोड़ों को मुगलों से प्राप्त कर लिया । विधिचन्द की यह निर्भयता देखकर मुगलों के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया और उन्होंने गुरू की शक्ति का दमन करने का निश्चय कर लिया । मुगल सैन्य—अधिकारी लालबेग तथा कमरबेग के अधीन एक सेना भेजी गई । जब गुरू जी को पता चला, तो वे भटिण्डे के समीप लहरा ग्राम में सुरक्षित स्थान पर चले गये । यहाँ उनका पीछा करना मुगलों के लिए हानिकारक था, लेकिन मुगल सेना ने सिक्खों का पीछा किया और इस स्थान पर हुए युद्ध में सिक्ख सेना ने मुगलों को पुनः पराजित किया ।[37] सिक्खों की यह महान विजय थी ।

मुगलों के विरुद्ध संघर्षो में लगातार विजयों के पश्चात् गुरूजी को सिक्ख—संगठन एवं अपने सैनिकों की वीरता पर विश्वास हो गया । तदुपरान्त गुरूजी करतारपुर में ही बस गये । यहाँ उन्होंने एक विशाल सेना तैयार कर अपनी शक्ति में और अधिक वृद्धि कर ली । तत्पश्चात् कुछ समय के लिए दोनों पक्षों की ओर से शान्ति छायी रही, परन्तु गुरू जी के ही एक सैन्य—अधिकारी पैंदाखान ने अपने कार्यो से सिक्ख—मुगल—संघर्ष को पुनः भड़का दिया । इन पैंदाखान के परिचय को लेकर भी अनेक मत उभरते हैं । सिक्ख—ज्ञात—प्रमाणों के अनुसार पैंदाखान गुरू हरगोविन्द की नर्स का बेटा था, इसलिए गुरूजी उसके प्रति अत्यधिक स्नेह रखते थे ।[38] कई वृत्तान्तों में उसे गुरू का पठान नौकर ही बताया गया है ।[39] इतना अवश्य

35. कन्हैया लाल, तीरख—ए—पंजाब, पृ0—33
36. तेजा सिंह एण्ड गंज सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख, भाग—ग, पृ0— 43
37. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग—2, पृ0—23.
38. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख, पृ0— 58
39. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 54

है कि गुरूजी पेंदाखान के प्रति बहुत दयालु थे तथा मुगलों के विरुद्ध पेंदाखान ने ही गुरू की सेना का नेतृत्व किया था और सफलता भी पाई थी । मोहसिन फानी ने उसे फतेह खाँ का पुत्र बताया है ।[40]

परन्तु एक बाज के छोटे से प्रश्न पर गुरू हरगोविन्द एवं पैंदाखान के मध्य मतभेद हो गये ।[41] इस पर उत्तेजित होकर पैंदाखान शाही सेना से मिल गया और उसने मुगल बादशाह शाहजहाँ को सिक्ख गुरू के विरुद्ध एक सेना भेजने के लिए प्रेरित किया । बादशाह ने अवसर का लाभ उठाकर पैंदाखान और कालेखान[42] की संयुक्त अध्यक्षता में एक सेना करतारपुर पर आक्रमण करने के लिए भेजी ।

इधर भाई गुरु दित्ता तथा भाई विधिचन्द ने इस संघर्ष में सिक्ख सेना का नेतृत्व किया । सिक्खों ने डटकर मुकाबला किया और मुगल सेना को पराजित कर दिया । पैंदाखान स्वयं गुरू के हाथों मारा गया । काले खाँ भी युद्ध क्षेत्र में मारा गया । इस प्रकार इस युद्ध में भी सिक्खों ने पुनः अपनी वीरता का परिचय दिया ।

वैसे भी सीमित साधनों से रक्षात्मक कार्यवाही व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव थी, अतः गुरूजी ने किसी सुरक्षित स्थान पर जाने की सोची । इस उद्देश्य से वह करतारपुर से फगवाड़ा पहुँचे, परन्तु इस नगर के लाहौर से 100 मील दूर जरनेली सड़क पर स्थित होने के कारण पुनः युद्ध छिड़ जाने का भय था, अतः वे कीरतपुर की और प्रस्थान कर गये ।[43] गुरू जी ने अपना शेष जीवन यहीं व्यतीत किया । उन्होंने भाई विधि चन्द को बंगाल और भाई गुरुदास को काबुल में धर्म–प्रचार के निमित्त भेजा । विधि चन्द जैसे सैनिक को बंगाल में प्रचारक बनाकर भेजना इस बात का प्रमाण है कि गुरू जी की नीति अपने अनुयायियों की सर्वपक्षीय उन्नति करना थी ।[44]

---

40. दबिस्तां, भाग–2, पृ0– 275
41. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख, पृ0– 58
42. कालेखान, मुखलिस खान का भाई था, जिसने अमृतसर की लड़ाई में मुगल सेना का सेनापतित्व किया था ।
43. पन्थ प्रकाश, पृ0–119
44. तेजा सिंह एण्ड गंडा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, भाग–1, पृ0– 86

गुरू हरगोविन्द का सम्पूर्ण जीवन अन्यायों और विधर्मियों से जूझते हुए ही बीता । वे अपने अनुयायियों से सर्वदा सत्य के मार्ग पर चलने का अनुरोध करते थे । उन्होंने कभी भी असत्य और अन्याय के सामने सिर नहीं झुकाया, सतत् वीरतापूर्वक उनका सामना किया। वे एक वीर और योद्धा फकीर थे ।[45]

गुरू हरगोविन्द के काल से सिक्ख इतिहास में जिस वीरोंन्माद का श्रीगणेश हुआ था, उसका विकास क्रमशः गुरू तेगबहादुर के काल में दृष्टिगोचर होता है । फिर यह वीरोन्माद दसवें गुरू अर्थात् गुरू गोविन्द सिंह के काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था, और अब तो यह वीरोन्माद सिक्खों का स्थायी गुण बन चुका है । सिक्खधर्म में हमें भक्ति और शक्ति का जो सम्मिलित रूप देखने को मिलता, वह अभूतपूर्व है ।[46]

गुरू हरगोविन्द ने अपने परलोकगमन से पूर्व अपने पौत्र (बाबा गुरू दित्ता के छोटे पुत्र) हरिराय को गुरू मनोनीत किया । गुरू हरगोविन्द 3 मार्च सन् 1644 ई0 को परलोक सिधारे ।[47]

गुरू जी के परिवार में उनके पांच पुत्र—बाबा गुरूदित्ता, सूरजमल, अमीराए, बाबा अटल और तेगबहादुर थे और एक पुत्री बीबी वीरो थी । बाबा अटल, बाबा गुरूदित्ता और अनीराए का अपने पिता के जीवनकाल में ही स्वर्गवास हो गया । सूरजमल दुनिया के सुखों की ओर आसक्त था और तेगबहादुर दुनिया से अधिक विरक्त था। अतः गुरू—गद्दी के लिए इन पुत्रों में से कोई भी योग्य न था । बाबा गुरूदित्ता के दो लडके थे— बड़ा धीरमल और छोटा हरिराय । धीरमल स्वभाव से बहुत चालाक और विश्वासघाती था, अतः गुरु हरगोविन्द नेबाबा गुरूदित्ता के छोटे पुत्र हरिराय को ही गुरू मनोनीत किया ।[48]

---

45. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू हरगोविन्द, पृ0— 10
46. वही, पृ0— 12
47. गुरू हरगोविन्द के परलोकगमन पर विभिन्न मत दिये गये हैं ।
    हेनरी कोर्ट 'सिक्खा' दें राज दी विधिआं' में 1638 ई0 मानता है । कनिंघम इसे 1637,38,39 के मध्य मानता है । ट्रम्प 1638 ई0 में और मोहसिन फानी 1645 ई0 में मानता है, क्योंकि वह कहता है कि 1643 ई0 में मैंने स्वयं गुरूजी को देखा था । अतः मोहसिन फानी का मत अधिक विश्वसनीय लगता है ।
48. प्रि0 तेजा सिंह, सिक्ख इतिहास दीआं कुछ झाकियाँ, पृ0— 31.

गुरू हरिराय सिक्खों के सातवें गुरू हुए । उनका जन्म सन् 1630 ई0[49] में बाबा गुरूदित्ता के घर कीरतपुर में हुआ था । इनकी माता निहालकोर थी । आपकी आयु 14 वर्ष की थी, जब आपको गुरू पद प्राप्त हुआ । स्वभाव से आप बहुत शान्तिप्रिय थे ।

गुरू हरिराय के समय में एक बार फिर सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में परिवर्तन आया । गुरूजी के पास 2200 घुड़सवारों[50] की सशक्त सेना थी, लेकिन उन्हें युद्ध से घृणा थी । वास्तव में यह समय सिक्खों की शांति का था और इस समय सिक्खधर्म की भी बहुत उन्नति हुई और प्रचार हुआ ।[51] मुगल बादशाह शाहजहाँ के साथ गुरूजी के सम्बन्ध उदार बने रहे, क्योंकि दारा ने अपने पिता को सिक्खों के विरुद्ध सैनिक अभियान करने से रोक दिया था । यह सम्बन्ध और भी मित्रतापूर्ण हो गये, जब गुरूजी ने बादशाह की प्रार्थना पर शाहजादा दारा के लिए दवाई भेजी ।

सन् 1648 ई0 में दारा बीमार पड़ गया । औरंगजेब ने, जोकि बहुत चतुर और कुटिल स्वभाव का था, अपने बड़े भाई दारा को भोजन में जहर दिलवा दिया । परिणामस्वरूप दारा बहुत बीमार पड़ गया । सभी इलाज निष्फल रहे । अन्त में एक चिकित्सक ने एक ऐसी दवाई[52] लाने को कहा, जो केवल गुरू हरिराय के पास ही मिल सकती थी । मुगल बादशाह शाहजहाँ ने पुरानी शत्रुता के प्रति लज्जित भाव रखते हुए मित्रवत् गुरूजी को औषधि के लिए पत्र लिखा । गुरूजी को औषधि के लिए पत्र लिखा । गुरू जी के औषधि भेजने पर शाहजहां बहुत प्रसन्न हुआ । वह औषधि दारा को दी गई और वह शीघ्र ही स्वस्थ होने लगा । बादशाह ने सिक्खों के प्रति भविष्य में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने का फैसला किया और पुरानी शत्रुता भुला दी ।[53]

अब दारा के हृदय में भी गुरूजी के प्रति बहुत आदरभाव पैदा हुआ, क्योंकि वह उनके द्वारा भेजी गई औषधि से ही बच पाया था। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी नम्र स्वभाव

49. सूरज प्रकाश, भाग–3, पृ0– 3117, एवं मैकालिफ, वही, भाग–4, पृ0– 203
50. कन्हैयालाल, तारीख–ए–पंजाब, पृ0– 34
51. तेजा सिंह एण्ड गंज सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस् भाग–1, पृ0– 73
52. तीस किस्म के लोग, हरीडी और राजमोती आदि मंगाये गये थे ।
53. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 277–79. पन्थ प्रकाश, पृ0– 121–122.

का व्यक्ति था और प्रत्येक धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था । इसी कारण दारा गुरूजी के पास भी गया था ।[54] इस प्रकार मुगल बादशाह व उसका ज्येष्ठ पुत्र दोनों ही गुरूजी से बहुत प्रभावित हुए तथा उनके प्रशंसक बन गये ।

सन् 1658 ई0 में मुगल बादशाह शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध छिड़ गया ।[55] औरंगजेब ने शाहजहाँ[56] को आगरा के किले में कैद कर लिया था ।[57] दारा पराजित होकर पंजाब की ओर भागा । स्वाभाविक्तः गुरू हरिराय की सहानुभूति क्रूर औरंगजेब की अपेक्षा उदार दारा से अधिक थी । दारा सम्भवतः गुरूजी के पास कुछ दिन ठहरता और उनसे सक्रिय सहायता की प्रार्थना करता, लेकिन उसे अगली सुबह ही सूचना मिली कि औरंगजेब की सेना उसका पीछा करती हुई आ रही है । अब उसने गुरूजी से प्रार्थना की कि जितनी जल्दी हो सके वे औरंगजेब की सेना की प्रगति को रोंकें, ताकि वह लाहौर की तरफ भागने में सफल हो सके । गुरूजी ने तुरन्त अपने 2200 घुड़सवार व्यास नदी के पार तैनात कर दिये । इससे औरंगजेब की सेना की गति में अवरोध उत्पन्न हो गया और दारा भाग निकलने में सफल हो गया ।

यदि दारा जैसा उदार स्वभाव का राजकुमार बादशाह बनता, जो सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में भी अकबर के शासनकाल जैसी मधुरता आ जाती । परन्तु युद्ध में औरंगजेब की विजय हुई और इतिहास ने एक नया मोड लिया । दारा को पकड़ लियागया और उसे जंजीरों से जकड़कर अति दयनीय अवस्था में दिल्ली की गलियों में घुमाया गया और तत्पश्चात् उसे मृत्यु–दण्ड दे दिया गया ।[58]

---

54. जे0एन0 सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–3, पृ0– 311–12.
55. ए0जे0 सैयद, औरंगजेब इन मुन्तखाब–उल–लुबाब, पृ0– 82
56. ''शाहजहाँ'' की आगरा में ही कैदी के रूप में 74 वर्ष की आयु में 22 जनवरी, 1666 ई0 को मृत्यु हो गई थी ।''

    ——बनारसी प्रसाद सक्सेना, पृ0– 369
57. ए0जे0 सैयद, वही, पृ0– 100.
58. जे0एन0 सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग 1–2, पृ0– 39–40

इस प्रकार एक बार फिर परिस्थितियों ने ऐतिहासिक काल क्रम को मोड़ दिया। अनुदार स्वभाव के औरंगजेब का मुगल तख्त पर आगमन सिक्ख अस्तित्व के लिए भी संकट की सूचना थी । परिस्थितियों के प्रवाह ने पुनः संघर्ष और रक्तपात के पक्ष में मत प्रगट किया था ।

****

(3) तृतीय संघर्ष (1658—1674) :

उत्तराधिकार के इस संघर्ष में अपनी कूटनीति, चतुराई एवम संघर्षशीलता के कारण औरंगजेब पूर्णरूपेण सफल हुआ । उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी भाईयों को एक—एक करके समाप्त कर, अपने पिता शाहजहाँ को भी आगरे के किले में कैद कर लिया । यह नवीन शासक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, जो दारूल—हर्ब को दारूल—इस्लाम में बदलना चाहता था । वह यह चाहता था कि हिन्दुस्तान के सभी लोग इस्लाम धर्म ग्रहण कर लें । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह जीवन भर प्रयत्नशील रहा ।

इस्लाम के समर्थक औरंगजेब जैसे धर्मान्ध बादशाह के शासनकाल में सिक्ख मुगल—संघर्ष तो अनिवार्य था ही, लेकिन गुरू हरिराय द्वारा दारा को दी गई सहायता के सन्देह ने इस अवसर को शीघ्र ही लाने में सहायता की । औरंगजेब द्वारा आरोप लगाया गया कि गुरूजी ने विरोधी दारा को सहायता दी है, अतः उन्हें दिल्ली बुला लिया गया ।[59] गुरूजी बादशाह का मन्तव्य जानते थे, अतः उन्होंने अपने बड़े पुत्र रामराय को भाई गुरदास[60] और भाई तारा के साथ दिल्ली भेज दिया ।[61]

गुरूजी ने औरंगजेब को उत्तर देने के लिए अपने पुत्र रामराय को आवश्यक निर्देश दे दिये तथा किसी भी स्थिति में औरंगजेब के प्रभाव में आकर गुरू—मर्यादा के विरुद्ध कार्य करने में स्पष्ट मनाही कर दी थी । रामराय बहुत चतुर तथा महत्वाकांक्षी नवयुवक था और उसमें वाक्पटुता भी पर्याप्त मात्रा में थी । औरंगजेब ने रामराय से उपरोक्त शंकाओं के सन्दर्भ में अनेक प्रश्न पूछे, जिनका रामराय ने समुचित उत्तर दिया । मुगल बादशाह इस नवयुवक की योग्यता से प्रभावित हुआ और उसने उसका उचित मान—सम्मान भी किया । औरंगजेब बहुत नीति—निपुण भी था तथा वह इस तथ्य को भी निश्चित कर लेना चाहता था कि कहीं सिक्ख—धर्म इस्लाम के विरुद्ध तो नहीं है । अतः उसने यह पूछा कि ग्रन्थ—साहिब में मुसलमानों की आलोचना क्यों की गई है तथा इसके प्रमाण के रूप में उसने 'आसा दी वार' में से निम्नलिखित पंक्तियों की ओर संकेत किया है ——

59. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख गुरूज़, पृ0— 130.
60. यह भाई गुरूदास वीरों का लेखक नहीं था ।
61. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 308.

"मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई कुमिआर ।

धड़ भांडे इट्टां कियां, जल्दी करे पुकार ।।"[62]

इससे रामराय कुछ सचेत हुआ, क्योंकि वह औरंगजेब के साथ अपने प्रभाव व मान—सम्मान को खोना नहीं चाहता था । अतः जल्दी से उसने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया कि शब्द मुसलमान भूल से लिखा गया है, वास्तव में यह शब्द बेईमान है । औरंगजेब बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने रामराय से सन्तुष्ट होकर उसे सम्मानपूर्वक विदा कर दिया ।

जब गुरू हरिराय को इस धूर्तता की सूचना मिली तो वे बहुत दुखी हुए, क्योंकि रामराय ने निश्चित रूप से मुगल दरबार में दुर्बलता तथा कायरता का प्रदर्शन किया था, जोकि पूर्णतः सिक्खधर्म के विपरीत है । गुरू हरिराय ने अपने पुत्र रामराय से सभी प्रकार के सम्बन्ध विच्छेद कर लिए तथा उसे घर से बहिष्कृत कर दिया । रामराय ने बड़ा प्रयत्न किया कि उसे क्षमा कर दिया जाये, परन्तु सिक्ख—परम्परा के अनुसार उसका कार्य क्षमा योग्य नहीं था और गुरूजी ने उसे क्षमा भी नहीं किया । रामराय द्वारा कठिनाईयाँ उत्पन्न करने की धमकी दी गई, जिसके कारण गुरूजी ने उसे 'मीणा'[63] कहा और सिक्ख भाईचारे से निष्कासित कर दिया ।[64]

अब रामराय पुनः बादशाह के पास पहुँचा और उसके कारण हुई अपनी दशा से उसे अवगत कराया । औरंगजेब ने, जोकि यही चाहता था, सिक्खों में फूट डालने का यह उचित अवसर समझा और उसने रामराय को मुगल—संरक्षण प्रदान करके उसे देहरादून की जागीर भी दे दी । बादशाह की यह चाल किसी सीमा तक काम कर गई, पर वह सिक्खों में फूट डालने के अपने मन्तव्य में सफल न हो सका । सिक्ख हमेशा अपने सच्चे पातशाह के ही साथ रहे ।

गुरू हरिराय के छोटे पुत्र हरिकृष्ण थे, अतः गुरूजी ने उन्हें गुरूगद्दी देने का निश्चय कर लिया । गुरू हरिराय 6 अक्टूबर सन् 1666 ई0 को 31 वर्ष की आयु में परलोक

62. आदि ग्रन्थ, आसा दी वार, पृ0— 466
63. मीणा— यह शब्द पंजाबी भाषा का है, जिसका अर्थ दुष्ट तथा कपटी होता है ।
64. मैकालिफ, वही, भाग—4, पृ0— 309, 14

सिधारे ।[65] उन्होंने अपने छोटे पुत्र हरिकृष्ण को सिक्खों का आठवाँ गुरू मनोनीत कर दिया ।

गुरू हरिकृष्ण का जन्म 7 जुलाई सन् 1656 ई0 को कीरतपुर में हुआ था।[66] आप लगभग 6 वर्ष के ही थे, जब गुरूगद्दी पर आसीन हुए । बाल गुरू हरिकृष्ण के समय में सिक्ख—मुगल सम्बन्धों में कोई विशेष प्रभावी घटना नहीं हुई । इतना अवश्य हुआ कि औरंगजेब ने उनके उत्तराधिकार सम्बन्धी अधिकार के बारे में पहलीबार हस्तक्षेप किया। हरिकृष्ण के गुरू बन जाने से उसका बड़ा भाई रामराय उससे ईर्ष्या करने लगा । रामराय की औरंगजेब तक पहुँच पहले से ही थी । उसने शाही दरबार में प्रार्थना की कि बादशाह को खुश करने के कारण ही मेरे पिता ने मुझे गद्दी से वंचित कर दिया है, अतः बादशाह से प्रार्थना है कि वह मुझे मेरा अधिकार दिलाने में सहायता करें । रामराय ने बादशाह को गुरू हरिकृष्ण को दिल्ली बुलवाने के लिए प्रोत्साहित भी किया ।[67]

औरंगजेब के लिए यह उचित अवसर था । उसने सोचा कि लोग गुरू को बहुत मानते हैं, इसलिए क्यों न गुरू की शक्ति कमजोर कर दी जाये ताकि लोग गुरू की तरफ न झुकें और फलतः इस्लाम धर्म फैलाने में सुविधा रहे । इसलिए उसने दोनों भाईयों—गुरू हरिकृष्ण तथा रामराय को आपस में लड़ाकर उनकी शक्ति कम करने की सोची, जिससे सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे ।[68]

इस तरह इतिहास में पहलीबार मुगलबादशाह ने सिक्खमत के उत्तराधिकार के लिए हस्तक्षेप किया । अतः औरंगजेब ने अम्बेर के राजा जय सिंह को गुरूजी को दिल्ली लाने के लिए भेजा ।[69] प्रारम्भ में गुरूजी दिल्ली जाने को तैयार न थे, लेकिन अन्त में उन्होंने दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया ।

---

65. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—1, पृ0— 145
66. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख गुरूज़, पृ0— 131
67. त्रिलोचन सिंह, गुरू तेगबहादुर, प10— 115—116
68. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 317—18.
69. फानी ज्ञान सिंह, त्वारीख गुरू खालसा, पृ0— 261

दिल्ली पहुँचने पर उन्होंने राजा जय सिंह के महल में निवास किया, परन्तु उन्होंने बादशाह से मिलने से इन्कार कर दिया क्योंकि गरू हरिराय ने उन्हें बादशाह से मिलने से रोका था । गुरू जी के साथ आदर का व्यवहार किया गया और राजकुमार मुअज्जम ने उनसे भेंट की । उसने बादशाह के समक्ष गुरूजी की बहुत प्रशंसा की ।[70]

यहाँ पर एक रोचक घटना भी सन्दर्गित की जा सकती है । प्रत्येक व्यक्ति जो भी बाल गुरूजी से मिलता था, सम्राट के समक्ष गुरूजी की प्रशंसा ही करता था । इस पर औरंगजेब गुरूजी का ज्ञान परखना चाहता था, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति तीव्र बुद्धि वाला कहता था। राजा जय सिंह के महल में रानियों तथा दासियों को एक से वस्त्र पहना दिये गये और बाल गुरू से उनमें से मुख्य–रानी को बताने के लिए कहा गया । गुरू जी ने प्रत्येक को अच्छी तरह से देखा और मुख्य–रानी की गोद में जा बैठे ।[71] इस प्रकार सभी लोग चकित रह गये और प्रसन्न भी हुए ।

गुरू हरिकृष्ण ने राजा जय सिंह द्वारा बार–बार प्रार्थना करने पर भी बादशाह से मिलना स्वीकार नहीं किया ।[72] औरंगजेब गुरूजी की प्रतिभा से प्रभावित था, अतः उसने गुरू हरिकृष्ण का गुरू–गद्दी पर अधिकार स्वीकार कर लिया और उसे विश्वास हो गया कि स्वर्गवासी गुरू हरिराय ने ठीक ही चुनाव किया था । लेकिन उसने अपने इस आशय को सार्वजनिक नहीं बनने दिया, क्योंकि वह दोनों दावेदारों को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था और उन्हें अपने स्वार्थ हेतु ही प्रयुक्त करना चाहता था ।[73]

कुछ इतिहासकारों का यह मत है कि औरंगजेब ने सिक्खों को स्वयं गुरू चुनने की अनुमति दे दी थी तथा उन्होंने हरिकृष्ण को ही गुरू चुना ।[74] एक अन्य ब्रिटिश अधिकारी सर जॉन माल्कम ने भी इसका समर्थन किया है ।[75] इस प्रकार पहली और अन्तिमबार मुगल बादशाह को सिक्ख गुरूओं के उत्तराधिकार में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हुआ ।[76] इस समय दिल्ली में चेचक का रोग फैला हुआ था । गुरूजी भी उससे प्रभावित हो गये और उन्हें

70. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–1, पृ0– 144
71. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 324–25
72. वही, पृ0– 328
73. फारेस्टर, ट्रेवल्स, भाग–1, पृ0– 222
74. वही, ए0, पृ0– 260
75. माल्कम, स्केच, वही, पृ0– 9
76. एस0सी0 बैनर्जी, वही, पृ0– 159

तीव्र ज्वर हो गया। उन्होंने बाल्यावस्था में ही 30 मार्च 1664 ई0 को इस शरीर का त्याग का दिया ।[77]

उनका अन्तिम समय देखकर सिकखों ने पूछा कि उनके पश्चात् अब अगले गुरू कौन होंगे ? गुरूजी ने पांच पैसे और एक नारियल मँगवाया जैसी परम्परा थी, और उन्हें हाथ में लेकर तीन बार हवा में घुमाया और फिर मत्था टेककर कहा कि 'बाब बकाले', अर्थात् भावी गुरू बकाला ग्राम में है ।[78] गुरूजी का यह संकेत स्पष्ट था कि तेगबहादुर रिश्ते में उनके बाबा लगते थे और वे बकाला ग्राम में रहते थे ।

लेकिन धीरमल और रामराय जैसे स्वार्थी तथा गुरूगद्दी के झूठे दावेदारों ने इन शब्दों के अर्थ अपनी इच्छानुसार निकाल लिए । इसके अतिरिक्त अन्य सोढ़ी लोग भी अपना—अपना दावा सिद्ध करने के लिए बकाला ग्राम में आ पहुँचे । इनमें से प्रत्येक अपने को वास्तविक गुरू बताने लगा । इस प्रकार गुरूगद्दी के लिए संघर्ष और प्रतियोगिता उत्पन्न हो गयी । धीरमल और रामराय ने इस स्थिति को और भी अधिक विषम बना दिया ।

धीरमल इस पाखण्ड में सबसे अधिक सफल रहा । उसने कई लोगों को गुमराह किया और भेंट आदि एकत्र करता रहा । अन्त में मक्खनलाल लुबाने द्वारा बाबा— बकाले की पहले सुलझाई गयी और 20 मार्च 1665 ई0 को गुरू तेगबहादुर ने गुरूगद्दी संभाली ।[79]

77. सुरिन्दर सिंह जौहर, हेण्डबुक ऑफ सिक्खीज्म

78. 'भाट बही तलौदा परगना जींद' (पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला) में यों लिखा है कि "गुरू हरिकृष्ण जी महल अठवां, बेटा गुरू हरिराय जी का, सूरजबंसी गोसल गोत्र, सोढ़ी खत्री, साल सत्रह सौ इक्कीस, चेत मासे सुदी चोंदा, बुधवार के दिन पंच पैसे नरेल मंगाए, तिन बार दायीं भुजा से घुमाए, धीमी आवाज से बचन किया कि मेरा बाबा तेगबहादुर बकाला वाला को असां के पीछे गुरू जानना, जो जानेगा गुरू तिस की बहुड़ी करेगा, आगे गुरू जी की मति गुरू जाणे ।"

79. इस सम्बन्ध में एक कथा इस प्रकार है कि— सिक्ख परम्पराओं के अनुसार मार्च 1665 ई0 को वैषाखी के दिन मक्खनशाह लुबाना, जो गुजरात का व्यापारी था, गुरूजी के दर्शन करने बकाला आया । उसका जहाज जो सामान से भरा था, वह डूबने लगा था और इस पर उसने प्रण किया था कि अगर उसका जहाज और वह बच सके तो वह गुरूजी को 500 मोहरें भेंट करेगा । इसी मनोरथ के लिए वह बकाला आया था और यहाँ आकर उसने देखा कि कई झूठे गुरू बने हुए हैं। उसने सच्चा गुरू ढूँढ़ने के लिए प्रत्येक के आगे दो—दो मोहरें रखनी प्रारम्भ कर दीं । गुरू तेगबहादुर के सामने भी उसने वैसा ही किया, लेकिन गुरूजी ने कहा कि जहाज डूबते समय 500 मोहरों का वचन दिया था, अब शेष मोहरें देने से पीछे क्यों हटता है । मक्खन शाह शेष मोहरें उसी समय सामने रखकर मस्तक नवा दिया और छत पर चढ़कर कहा गुरू लाधो रे— गुरू लाधों रे । इस प्रकार गुरू तेगबहादुर को गुरूगद्दी प्राप्त हुई ।

—प्रीतम सिंह गिल, गुरू तेगबहादुर, पृ0— 42—43

गुरू तेगबहादुर का जन्म 1 अप्रैल सन् 1621 ई0 को गुरू हरगोविन्द के घर अमृतसर में हुआ था ।[80] आप गुरू हरगोविन्द के पांचवें और सबसे छोटे सुपुत्र थे । आपकी माताजी का नाम नानकी था । बाबा गुरूदित्ता, बाबा सूरजमल, बाबा अनीराय तथा बाबा अटलराय आपके अग्रज थे । अपने बडे भाईयों की तरह गुरू तेगबहादुर ने भी धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ सैनिक शिक्षा भी प्राप्त की । आप इतने शूरवीर तथा युद्ध विद्या में निपुण थे कि करतारपुर के युद्ध में आपने अपने पिता की अनुज्ञा से सक्रिय भूमिका निभाई तथा वीरता के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये कि पिताजी ने प्रसन्नता से पीठ ठोककर उत्साह बढ़ाया। इसी शूरवीरता के कारण गुरू हरगोविन्द ने अपका नाम त्यागमल से तेगबहादुर रख दिया । गुरू तेगबहादुर का विवाह करतारपुर निवासी श्री लालचन्द की पुत्री गुजरी जी से हुआ था। जब गुरू हरगोविन्द कीरतपुर में ज्योति–ज्योति समाए, तो आप अपनी माता नानकी जी तथा धर्मपत्नी गुजरी जी के साथ कीरतपुर से अपने ननिहाल के गांव बकाला आ गए और निरन्तर कई वर्षो तक वहीं रहते रहे और घोर तपस्या की ।

जिस मकान में आप रहे तथा जिस भू–गर्भ कक्ष में बैठकर आपने तपस्या की, वहाँ अब शानदार स्मारक गुरूद्वारे बने हुए हैं । सन् 1656 ई0 में आपने तीर्थयात्रा का कार्यक्रम बनाया और कुरूक्षेत्र, हरिद्वार, मथुरा, प्रयाग, बनारस तथा गया आदि तीर्थो का दर्शन करके आप 21 मार्च 1664 ई0 को दिल्ली लौट आये । इन दिनों गुरू हरिकृष्ण जी अपनी माता सुलक्खणी के साथ औरंगजेब के निमंत्रण पर दिल्ली पहुँचे हुए थे । उनके साथ सातवें गुरू हरिराय जी के देहावसान पर शोक प्रगट करने के उपरान्त कुछ समय के लिए आप पुनः बकाला आ गये ।[81]

आपको दिल्ली से आये कुछ ही दिन बीते थे कि गुरू हरिकृष्ण शीतला–पीड़ित होकर ज्योति–ज्योति समागये । उन्होंने 'बाबा–बकाला' के शब्दों से आपको अपना उत्तरा–धिकारी, अर्थात् सिक्खों का नौवां गुरू नियुक्त किया ।

80. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 184
81. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्री गुरु तेगबहादुर– जीवन तथा रचना, पृ0– 11

गुरू नानकदेव के पश्चात् आप पहले गुरू थे, जिन्होंने दूर–दूर तक सिक्खमत का प्रचार किया । गुरू तेगबहादुर जी अपने समूचे परिवार तथा कुछ अन्य सिक्खों को साथ लेकर श्री हरमन्दिर साहब के दर्शनों के लिए अमृतसर गये । उस समय हरमन्दिर साहब पर बाबा हर जी का अधिकार था, जो पृथ्वीचन्द का पौत्र था । उसने गुरूजी के आने का समाचार सुनकर हरमन्दिर साहब के दरवाजे बन्द करवा दिये ।[82] इस कारण गुरूजी को बाहर अकाल बुंगा के पीछे ही रुकना पड़ा । इस पवित्र स्थान पर अब गुरूद्वारा 'थड़ा साहब' विद्यमान है । अमृतसर से आप माझा और मालवा के कई स्थानों से होते हुए मई 1665 ई0 में कीरतपुर पहुँचे । एक सप्ताह बाद विलासपुर के राजा दीपचन्द की सत्रहवीं थी, जिसमें गुरूजी भी सम्मिलित हुए । रानी चम्पा ने श्रद्धा की भावना से माखोवाल के समीप कुछ धरती गुरूजी को भेंट में देनी चाही, लेकिन गुरूजी ने उसका मूल्य चुका कर उसे सरीह लिया । बाद में 19 जून 1665 ई0 को गुरूजी ने उस स्थान पर 'चक नानकी' की नींव रखी । इसी पवित्र स्थान का नाम आजकल 'आनन्दपुर साहब' है ।

चक–नानकी के निर्माण का काम सिक्ख संगतों को सोंपकर गुरूजी कुछ समय पश्चात् पूर्व की लम्बी यात्रा पर चल पड़े । मालवा में प्रचार करते हुए आप धमधान पहुँचे । जहाँ कहीं भी आप जाते, लोग भारी भीड़ में आ जूटते ।[83] आपकी भव्यता देखकर मुगल अधिकारियों के मन में कई प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हो गई थीं ।

सिक्ख साहित्य के वृत्तान्तों के अनुसार धीरमल और रामराय गुरू तेगबहादुर के विरुद्ध अभी भी संयुक्त षड्यंत्र रच रहे थे । रामराय की मुगल बादशाह औरंगजेब तक पहुँच थी और वह उसके गुरूगद्दी पर अधिकार की मांग से प्रभावित था। अतः औरंगजेब ने गुरू तेगबहादुर को शान्ति का घातक तथा गुरूगद्दी का अपहर्ता बताकर दिल्ली बुला लिया। औरंगजेब और गुरूजी में एक लम्बी चर्चा हुई, जिसमें बादशाह ने गुरूजी को इस्लाम के घेरे में लाने की पूरी चेष्टा की, किन्तु गुरूजी पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा ।

---

82. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्रीगुरू तेगबहादुर– जीवनी तथा रचना, पृ0– 12
83. वही, पृ0– 12

अम्बेर का राजा रामसिंह गुरूजी का श्रद्धालु था । उसने बादशाह को विश्वास दिलाया कि गुरूजी निर्दोष हैं । राजा राम सिंह ने कहा कि गुरू तेगबहादुर जैसे व्यक्ति धार्मिक तीर्थ—यात्राओं के लिए निर्मित किये गये हैं, न कि राजनैतिक कार्यो के लिए। तत्पश्चात् गुरूजी दिल्ली से पूर्व की ओर चल पड़े । उन्होंने पटना, ढाका, सिलहट, षटगांव, सोनद्वीप, गोहाटी, डुबडी और जगन्नाथपुरी की यात्रा की और धर्म—प्रचार किया ।[84]

सन् 1669 ई0 में राजा राम सिंह को असम की भयंकर चढ़ाई के लिए नियुक्त किया गया । यह कार्य जोखिम भरा था और राजा यह जानता था कि वह उस मुसीबत से साफ नहीं बच सकता । अतः उसने गुरू तेगबहादुर से मुंगेर नगर के निकट कहीं मिलकर अपने साथ चलने की विनम्र विनती की । गुरूजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और असम की तरफ उसके साथ हो लिये ।[85] असम में ठहरने के दौरान आपने प्रयत्न किया कि मुगलों और असमियों में युद्ध न हो । इसमें आपको पर्याप्त सफलता भी मिली और रक्तपात होने से बच गया । डुबड़ी नगर में आपकी याद में एक शानदार गुरूद्वारा अभी भी स्थित है ।

परन्तु गुरूजी अधिक समय तक असम में नहीं ठहर सके । औरंगजेब ने सन् 1669 ई0 में अपनी नई धार्मिक नीति की घोषणा करके काफिरों के विरुद्ध अनेक कठोर आदेश दिये, जिससे देश में आतंक छा गया ।[86] मुगल बादशाह की इस नवीन धार्मिक नीति से उत्पन्न उत्पीड़न ने गुरू तेगबहादुर को त्रस्त जनता की सहायतार्थ वापस आने को बाध्य कर दिया ।

मुगल बादशाह औरंगजेब का मन्तव्य हिन्दुस्तान को सुन्नी मुसलमानों की धरती में परिवर्तित कर देना था । उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अकबर के समय की सहनशीलतापूर्ण नीति को पूर्णतः तिलांजलि दे दी । उसने सभी सम्प्रदायों एवं धर्मो के साथ कठोरता का व्यवहार करना आरम्भ कर दिया । उसने आज्ञा जारी कर दी कि सभी पुराने

84. प्रीतमसिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 189
85. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्रीगुरू तेगबहादुर— जीवनी तथा रचना, पृ0— 13.
86. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्रीगुरू तेगबहादुर— जीवनी तथा रचना, पृ0— 13.

मन्दिर गिरा दिये जायें । मुगल प्रशासन की ओर से नवीन मन्दिरों के निर्माण को रोक दिया गया और पुराने मन्दिरों की मरम्मत करना भी वर्जित कर दिया गया ।[87] फलस्वरूप सोमनाथ, मथुरा और बनारस के मन्दिर गिरा दिये गये । औरंगजेब ने आज्ञा दी कि सिक्खों के मन्दिरों को भी गिरा दिया जाये और मसन्दों को नगरों से निष्कासित कर दिया जाये ।[88] उसने घोषणा की कि जो कोई हिन्दू इस्लाम स्वीकार करेगा, उसे जागीरें, शाही सेना में नौकरी तथा अन्य सुविधायें दी जायेंगी । इसके अतिरिक्त लोगों को बलपूर्वक भी इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया।

जब गुरूजी को शासन के नये अत्याचारों की भनक मिली, तो वे तत्काल असम से पंजाब के लिए वापिस चल पड़े। मार्ग में उन्होंने दीवान मतिदास को भेजकर पटना से अपने परिवार को भी बुलवाकर साथ ले लिया। कुछ समय लखनौर में रुककर गुरूजी पंजाब के अलग—अलग भागों में भ्रमणार्थ चल दिये ।

इस समय जनता में बड़ी अशान्ति थी । शासन के अत्याचार से लोग आतंकित थे । प्रायः ऐसा होता है कि लोग धार्मिक जीवन में दृढ़ न भी हों, तो भी यदि कोई कभी उनके धर्म में बल प्रयोग करे या उनके धर्मस्थानों को हानि पहुँचायें या बलात् उन्हें किसी दूसरे धर्म में लाने का यत्न करें, तब उनके भावों को चोट पहुँचती ही है । धार्मिक अत्याचार के साथ—साथ आर्थिक अत्याचार भी लोगों की मुसीबतों में वृद्धि कर रहे थे। सरकारी जगीरदारों तथा अधिकारियों से दुःखी होकर गांवों के भोले—भाले कृषक प्रायः जमीन छोड़कर घर से बेघर हो जाते थे ।[89]

दुखों—कष्टों के इस गहन अन्धकार में गुरूजी के मधुर, प्रभावशाली तथा जीवनदायी उपदेशों ने जनता में आलोक प्रसारित किया । लोग सामूहिक रूप से उनके मनोहर वचनों को सुनने के लिए एकत्रित होने लगे । गुरूजी जहाँ भी पहुँचते, असंख्य लोग इकट्ठे हो जाते । 'भस काहू को देत नहिं, नहिं भय मानत आन''— गुरूजी के इस सिद्धान्त

87. श्री राम शर्मा, द रिलीजन पॉलिसी ऑफ द मुगल इम्परर्स, पृ0— 130
88. जे0एन0 सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग—3, पृ0— 212
89. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्रीगुरू तेगबहादुर— जीवनी तथा रचना, पृ0— 14.

का विशेषकर विद्युत सा प्रभाव होता और लोगों को महसूस होता कि जैसे उनके विनाशोन्मुख जीवन को कोई अवलम्ब मिल गया हो । परन्तु सरकारी कर्मचारियों एवं अखबारनवीसों पर इसका उल्टा प्रभाव पड़ा और उन्होंने बढ़ा–चढ़ाकर बादशाह के पास सूचनायें भेजीं, जिससे धीरे–धीरे शासन इसओर से बेचैन होने लगा ।[90]

व्यावहारिक रूप में औरंगजेब ने अपनी नई धार्मिक नीति का प्रयोग सर्वप्रथम काश्मीर में किया था । ऐसा करने के दो कारण थे । प्रथम तो काश्मीरी ब्राह्मणों का भारत के हिन्दू समुदाय में अत्यधिक मान था और यह विचार किया जाता था कि यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लेंगे तो अन्य प्रान्तों के हिन्दू भी बिना किसी हील–हुज्जत के उनका अनुसरण करेंगे । द्वितीय, यदि काश्मीरी ब्राह्मणों ने विरोध किया तो पेशावर तथा काबुल जैसे समीपवर्ती क्षेत्रों से मुस्लिमों को जिहाद के लिए बुला लिया जायेगा । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शेर अफगन को काश्मीर का गवर्नर नियुक्त किया गया, जिसने वहाँ कत्लेआम एवं उत्पीड़न प्रारम्भ कर दिया । काशमीर के ब्राह्मणों ने तंग आकर छह मास का समय मांगा । तत्पश्चात् 25 मई 1675 ई0को पण्डित कृपाराम के नेतृत्व में 16 सदस्यों का एक शिष्ट मण्डल गुरू तेगबहादुर के दरबार में आकर उपस्थित हुआ ।[91] उन्होंने गरू तेगबहादुर को अपनी दुखान्त कथा कह सुनाई। गुरू जी पहले ही स्थिति से परिचित थे, किन्तु इन वृत्तान्तों का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा । कुछ समय विचार करने के बाद गुरूजी ने इन ब्राह्मणों से कहा कि आप मुगल बादशाह औरंगजेब के पास जाओ और उसे कहो कि गुरू तेगबहादुर अब महान् गुरूनानक की गद्दी पर विराजमान हैं, जो कि विश्वास और धर्म के रक्षक हैं । पहले उन्हें मुसलमान बना लो, फिर हमारे सहित सभी लोग इस्लाम स्वीकार कर लेंगे ।[92]

---

90. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्रीगुरू तेगबहादुर– जीवनी तथा रचना, पृ0– 14.
91. भाट वही तलोदा, परगना जींद में यों लिखा है कि–

    "कृपाराम बेटा बहूराम का, पोता नरेणदास का, पड़पोता ब्रह्मदास का, वंश ठाकुरदास की भारद्वाजी गोत्र सारस्वत, दस्त ब्राह्मण, वासी मटन, परगना श्रीनगर, देस काश्मीर,, षोडस मुख्य ब्राह्मणों को संग लेकर चक–नानकी आया, परगना कहलूर में सम्वत् सत्रह सौ बत्तीस, जेठ मासे सुदी एकादशी के दिन गुरू तेगबहादुर महल नांवां ने इन्हें धीरज बंधाया ।"
92. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 372

ब्राह्मणों ने ऐसा ही किया । इस सन्देश से मुगल बादशाह औरंगजेब बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि यदि गुरू इस्लाम स्वीकार करने को न भी तैयार हुए, तो वे अवश्य हमें कोई न कोई चमत्कार दिखा देंगे । परन्तु इसी मध्य कुछ राजनैतिक परिस्थितियाँ ऐसा मोड़ ले गयीं कि मुगल बादशाह को स्वयं दिल्ली से प्रस्थान करना पड़ गया ।

फरवरी 1674 ई0 में अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिए गये हुए मुगल सैन्य अधिकारी शुखाअस्त खाँ की मृत्यु तथा मुगल फौज की पराजय की सूचना अब औरंगजेब को मिली, तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ और उसने अफगानों के विद्रोह को कुचलने के लिए स्वयं जाने का निर्णय कर लिया । इस प्रकार 7 अप्रैल 1674 ई0 को औरंगजेब दिल्ली से हसन अब्दाल की तरफ चल पड़ा ।[93]

इस प्रकार गुरू तेगबहादुर का दिल्ली को बुलावा कुछ समय के लिए टल गया, परन्तु परिस्थितियाँ लगातार विपरीत होती जा रही थीं । चापलूस सिक्ख–विरोधी मुगल अधिकारी सिक्खों को नष्ट करने के प्रयोजन से मुगल बादशाह को न केवल सिक्ख–विरोधी ही, अपितु अतिश्योक्तिपूर्ण विवरण भी भेज रहे थे और गुरू की शक्ति को स्वयं मुगल साम्राज्य के लिए गहन खतरे के रूप में प्रचारित कर रहे थे ।

93. डा0 गंडा सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0— 44

****

(4) गुरू तेगबहादुर का बलिदान (1675) :

बलिदान और त्याग की सिक्ख—परम्परा प्रारम्भ से ही चली आ रही थी । सिक्ख गुरूओं ने जुल्म और अत्याचार के समक्ष—झुकना नहीं सीखा था । प्रत्येक सिक्ख गुरू ने अत्याचारके विरुद्ध आवाज उठाई थी । पाँचवें गुरू श्रीगुरू अर्जुनदेव ने मुगल बादशाह जहांगीर के हाथों धर्मवीर गति प्राप्त की । उन्होंने बलिदान देने की नींव रखीं, जिसे सिक्खों ने आगे बढ़ाया और जिससे उनके कार्यों को एक नई दिशा मिली, जो उनके इतिहास में एक परिवर्तित केन्द्र बिन्दु था ।[94]

गुरू तेगबहादुर ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया और मुगलों के जुल्म एवं अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई और संघर्ष करते रहे, फलस्वरूप उन्होंने मुगल बादशाह औरंगजेब के हाथों धर्मवीरगति प्राप्त की ।

काश्मीरी ब्राह्मणों से वार्तालाप के उपरान्त गुरू तेगबहादुर ने मालवा प्रदेश में जोर—शोर से धर्म प्रचार करना आरम्भ कर दिया । भारी संख्या में सिक्ख संगतें गुरू के दर्शन करने आने—जाने लगीं । सरकारी वाक्यानवीसों के मन में कई शंकायें उत्पन्न होने लगी । उन्होंने बादशाह औरंगजेब को लिखा कि दो फकीर हाफिज आदम और तेगबहादुर क्रमशः मुसलमानों एवं हिन्दुओं से इतना धन एकत्रित कर रहे हैं कि यदि उनकी शक्ति तथा प्रभाव बढ़ता गया तो कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि वे कोई उत्पात खड़ा कर दें ।[95] परन्तु उपरोक्त कथन सत्य से बिल्कुल परे हैं, क्योंकि हॉफिज आदम की गुरू तेगबहादुर के गुरूगद्दी पर बैठने से 21 साल पहले ही 14—15 दिसम्बर सन् 1643 ई0 को मृत्यु हो चुकी थी तथा वह समय बादशाह शाहजहाँ का था, जिसके हुक्म से उसे लाहौर से निकल जाने को कहा गया था और वह हज करने चला गया था, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई । उसका मकबरा मदीने— हजरत—उस्मान के मकबरे के पास है ।[96] इसप्रकार गुरू तेगबहादुर तथा हाफिज आदम का परस्पर कोई सम्बन्ध ही प्रतीत नहीं होता है ।

94. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन द हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, भाग—1, पृ0— 164
95. खुशवन्त सिंह, ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, भाग—1, पृ0— 73
96. मिर्जा मुहम्मद अख्तर, तजकिरा—ए—हिन्दी वा पाकिस्तान, पृ0— 401

जहाँ तक गुरू तेगबहादुर के धन एकत्रित करने की बात है यह भी निर्मूल है, क्योंकि कभी भी किसी सिक्ख गुरू ने बलपूर्वक धन वसूल नहीं किया । सिक्ख परम्परा तो यह है कि जब भी कोई सिक्ख गुरूजी के दर्शन करता था, तो अपनी इच्छानुसार भेंट चढ़ाता था । भेंट की कोई निश्चित रकम भी नहीं थीं । आज भी जब सिक्ख अपने गुरू– श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के समक्ष मत्था टेकते हैं, तो अपनी इच्छानुसार ही भेंट चढ़ाते हैं । यह प्रथा ज्यों की त्यों चली आ रही है ।[97]

इस प्रकार सरकारी वाक्यानवीसों ने गुरू तेगबहादुर के धार्मिक प्रचार–दोरों को गलत समझा, या जानबूझ कर उन्हें राजनैतिक रूप दे दिया । इसके साथ ही बादशाह औरंगजेब को यह सूचना भी मिली कि गुरू तेगबहादुर ने काश्मीरी ब्राह्मणों के साथ सहानुभूति प्रगट की है, जिससे इस्लाम के प्रचार में बाधा उत्पन्न हुई है ।

इस पर मुगल बादशाह औरंगजेब ने गुरू तेगबहादुर को शान्ति के लिए घातक बताकर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए लाहौर के सूबेदार के नाम आदेश भेज दिया । गुरू तेगबहादुर की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में भी कई मत प्रचलित हैं । सिक्ख परम्पराओं के अनुसार जब काश्मीरी पण्डितों का दल औरंगजेब से मिला, तो उसने गुरू तेगबहादुर को दिल्ली बुलाने के लिए दो सन्देशवाहक भेजे । गुरूजी ने वर्षा ऋतु के बाद दिल्ली आने के लिए कहा । सन्देशवाहकों के जाने के पश्चात् गुरूजी स्वयं आगरा की ओर रवाना हो गये ।[98]

इसी मध्य औरंगजेब ने पुनः सन्देश वाहक, गुरूजी के प्रस्थान के बारे में जानने के लिए, 'माखोवाल' भेजे । उनके पहुँचने से पूर्व ही गुरूजी आगरा की तरफ निकल चुके थे । सन्देशवाहक अमृतसर गये, लेकिन वहाँ भी गुरूजी न मिले । अब उन्हें शक हो गया और उन्होंने बादशाह को सूचित किया। औरंगजेब ने सारे साम्राज्य में गुरूजी को कैद करने की आज्ञा जारी कर दी । आगरे के समीप एक बाग में गुरूजी पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अपनी अंगूठी एक चरवाहे बालक को दी और अपना कीमती शाल देकर

97. गंडा सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0– 41
98. मैकालिफ, वही, पृ0– 374

मिठाई लाने को कहा । चरवाहा बालक मुगल पुलिस द्वारा पकड़ा गया और पूछताछ करने पर वे गुरू तेगबहादुर के पास पहुँचे । शीघ्र ही गुरू तेगबहादुर कैद कर लिये गए और साथियों सहित उन्हें दिल्ली लाया गया ।[99]

लेकिन यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता । क्योंकि इस बात की सम्भावना कम ही है कि मुगल बादशाह औरंगजेब जैसे कठोर बादशाह का हुक्म हो जाने पर भी पंजाब की सरकार इतनी लापरवाही करती कि गुरू तेगबहादुर अपनी इच्छा से मालवे में कई महीने प्रचार करते तथा फिर आगरे तक चले जाते और हुकूमत को पता भी न चलता । फिर आगरे में उन्हें अपनी गिरफ्तारी के लिए एक प्रकार से नाटकीय ढंग बरतना पड़ता । इसके अतिरिक्त आगरे जाने का कोई प्रयोजन भी न था, जबकि बादशाह स्वयं हसन अब्दाल की ओर थे । यह भी नहीं हो सकता कि गुरू तेगबहादुर जैसे व्यक्ति को यह पता न हो कि बादशाह आगरे में है या हसन अब्दाल की तरफ है ।[100]

वास्तविकता यही प्रतीत होती है कि जब मुगल बादशाह ने गुरू तेगबहादुर को गिरफ्तार करने के लिए लाहौर के सूबेदार के नाम हुक्म जारी कर दिया, तो उसने शाही आदेश का पालन तत्परता से किया और शीघ्र ही सरहिंद के फौजदार के नाम यह आदेश लिख दिया । उसने आगे रोपड़ पुलिस के थानेदार को नियुक्त कर दिया, क्योंकि आनन्दपुर रोपड़ पुलिस के क्षेत्र में आता था । इस प्रकार रोपड़ के थानेदार 'नूर मुहम्मद खान मिर्जा' ने गुरू तेगबहादुर को कीरतपुर से कुछ दूरी पर मलकपुर नामक ग्राम में गिरफ्तार कर लिया।[101] तत्पश्चात् गुरू तेगबहादुर को एक महीने के लगभग सरहिंद में कैद रखा गया। इस प्रकार बाद में उन्हें दिल्ली लाया गया और चांदनी चौक में कैद कर लिया गया।[102]

गुरू तेगबहादुर ने अपना कैदी जीवन अत्यन्त साहस के साथ व्यतीत किया। उनके दैनिक कार्यक्रम में कोई भी व्यवधान नहीं हुआ । वे नित्य ईश्वर का नाम लेते और गुरू

99. प्रीतम सिंह गिल, गुरू तेगबहादुर, पृ0— 66—67
100. डा0 गंडा सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ.0— 46
101. वही, पृ0— 46
102. त्रिलोचन सिंह, गुरू तेगबहादुर, पृ0— 308

वाणियों का नियम से पाठ करते । उन्हें अपने जीवन से कोई मोह नहीं था । वे धर्म, सत्य तथा न्याय के लिए किसी भी खतरे से हँसते–हँसते जूझने को तैयार थे । वे कितने धैर्यवान और साहसी थे, इसका पता हमें उस पत्र से मिल जाता है जो उन्होंने आनन्दपुर अपनी माताजी के पास भेजा था । यह पत्र श्लोक–शैली में लिखा गया था । यह श्लोक गुरू ग्रन्थ–साहिब के अन्तिम पृष्ठों में संग्रहित है । गुरू तेगबहादुर ने उसमें फरमाया है–

"गुरू गोविन्द गाहऊ नहीं, जन्म अकारथ कीन ।
कहु नानक हरि भज मना, जिह बिधि जल को मीन ।।"[103]

गुरू तेगबहादुर ने स्पष्ट बता दिया कि उनके लिए कोई दुख न मनाया जाए, यह संसार तो असार है, जगत् तो मिथ्या है, इसके लिए दुख मनाना व्यर्थ है । उधर आनन्दपुर में गुरू तेगबहादुरकी अनुपस्थिति में वीरानी छा गई थी । यों सबको अपने गुरूजी की वीरता पर गर्व था, क्योंकि उन्होंने अधर्म के खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजाया था ।[104]

मुगल सरकार ने गुरू तेगबहादुर पर कई प्रकार के आरोप लगाये । उन्हें शान्ति के लिए घातक बताया गया और राजनैतिक षडयंत्रकारी की संज्ञा दी गई । उन्हें गुरूगद्दी का अवास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया गया । इसके अतिरिक्त उन्हें इस्लाम के प्रचार में भी बाधक बताया गया । इन आरोपों के साथ उन्हें प्रधान काजी के सामने पेश किया गया । गुरू तेग बहादुर ने इन सभी आरोपों का खण्डन कर उचित उत्तर दिये । लेकिन काजी ने उन्हें इस्लाम कबूल करने के लिए कहा, जिस पर गुरूजी ने दृढ़ता से इन्कार कर दिया । अन्ततः जब सरकार का कोई भी प्रयत्न उनके दृढ़ निश्चय को नहीं डिगा सका, तो काजी ने उन्हें मौत का फतवा दे दिया ।

गुरू तेगबहादुर के बलिदान के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं । सिक्ख परम्पराओं के अनुसार दिल्ली में औरंगजेब ने गुरू तेगबहादुर से इस्लाम स्वीकार करने को कहा, लेकिन गुरूजी ने इन्कार कर दिया। गुरूजी के बार–बार इन्कार करने पर भी औरंगजेब का विचार था कि वे इस्लाम कबूल कर ही लेंगे । औरंगजेब ने कहा कि अगर आप सच्चे फकीर

103. आदि ग्रन्थ, श्लोक महल्ला नांवां (9)
104. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू तेगबहादुर, पृ0– 43

हैं, तो कोई चमत्कार ही दिखाओ ।[105] इस पर गुरूजी ने कहा कि चमत्कार तो ईश्वर के हाथ में है ।[106] इसके बाद गुरूजी को सबसे ऊपर की मंजिल पर कैद में रखा गया । एक दिन बादशाह ने उन्हें वहाँ खड़े देखकर सोचा कि शायद गुरूजी दक्षिण की तरफ शाही हरम की ओर देख रहे हैं । अगले दिन इसी आरोप सहित उन्हें फिर बुलवाया गया ।[107] गुरूजी के साथी घोर अत्याचार के बाद मार दिये गये । जब गुरूजी ने न तो इस्लाम कबूल किया ओर न ही कोई चमत्कार दिखाया, तो उन्हें मृत्युदण्ड दे दिया गया ।[108]

एक अन्य मत इस प्रकार है कि मुगल बादशाह औरंगजेब ने गुरू तेगबहादुर से, इस्लाम के इन्कार करने पर, कोई चमत्कार दिखाने को कहा । गुरूजी ने कहा कि यदि बादशाह कोई चमत्कार देखना ही चाहते हैं, तो वे एक प्रदर्शन करने को प्रस्तुत हैं । उन्होंने कहा कि वे एक मन्त्र लिखेंगे और जो इस मन्त्र को अपने गले में बांधेगा, उसकी गर्दन पर तलवार के वार का कोई प्रभाव न होगा । उन्होंने इसे अपने ही गले में बाँध लिया और बधिक को वार करने का संकेत किया । बधिक ने पूरे जोर का हाथ मारा और गुरूजी का सिर छिटक कर एक तरफ जा गिरा । सब लोग आश्चर्यचकित रह गए । फिर उस कागज को खोलकर पढ़ा गया, तो उस पर लिखा था कि— सिर दिया पर सिरड़ न दिया । अर्थात्— अपना सिर तो दे दिया, पर भेद न दिया ।[109]

एक अन्य मत के अनुसार उपरोक्त कथन की गुरूजी ने स्वयं अपने किसी कारण बधिक के वार के नीचे सिर दिया, सिक्ख आन्दोलन के पूर्व स्थापित चरित्र के रूप को पूर्णतया बदल देता है ।[110] इसके अनुसार ज्ञात प्रमाणों के आलोचनात्मक अध्ययन से ऐसा

105. ज्ञानी ज्ञान सिंह, तवारीख गुरू—खालसा, पृ0— 280
106. प्रीतमसिंह गिल, गुरू तेगबहादुर, पृ0— 68
107. गुरूजी ने इस आरोप का उत्तर देते हुए कहा कि वे उसकी रानियों की तरफ नहीं देख रहे थे, बल्कि उन योरपियनों की तरफ देख रहे थे जो समुद्र पार से आ रहे हैं और उसके साम्राज्य को नष्ट कर देंगे । (लेकिन उपरोक्त मत की तरह यह उत्तर भी मनगढ़न्त है और किसी अंग्रेज भक्त इतिहासकार के मन की कल्पना है ।)
108. त्रिलोचन सिंह, गुरू तेगबहादुर, पृ0—323.
109. लतीफ, हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0— 260
110. फौजा सिंह, मिलिट्री सिस्टम ऑफ द सिक्खस्, पृ0— 87

प्रतीत होता है कि गुरूजी एक ऐसे शस्त्र संघर्ष को ऊपर उठाने के प्रयत्न में थे, जो कि सिक्ख–आन्दोलन की अच्छी रीतियों के आधार पर सही तथा उचित कारणों के लिए लड़ा जाये ।[111]

लेकिन वास्तविक सत्य यही प्रतीत होता है कि औरंगजेब का आदेश आने पर दिल्ली में शाही काजी तथा अमीरों की उपस्थिति में गुरू तेगबहादुर को इस्लाम स्वीकार करने या करामात दिखाने या मौत स्वीकार करने को कहा गया । गुरू तेगबहादुर को डराने–धमकाने के लिए काजी ने गुरूजी के दो सेवणदारों भाई मतिदास और भाई दियाला को पहले अपने दमनचक्र के लिए चुना । पहले तो भाई मतिदास को बिना किसी अपराध के चांदनी चौक में जिन्दा ही आरे से चीरकर मार डाला गया, फिर भाई दियाले को उबलती देग में डालकर उनका करुण अन्त कर दिया गया । इस पर भी गुरू तेगबहादुर अपने फैसले पर अडिग रहे ।

अतः 11 नवम्बर 1675 ई0 का वह हृदयद्रावक दिन भी आ गया, जिस दिन गुरू तेगबहादुर ने असत्य और अधर्म के खिलाफ शहीद होना स्वीकार कर लिया । उस दिन गुरू तेगबहादुर को लोहे के पिंजरे से निकाला गया और चांदनीचौक में लाया गया । उनका चित्त शान्त या एवं उनके चेहरे पर कोई बेचैनी नहीं थीं ।आँखों में दृढ़ निश्चय की अलौकिक आभा छाई हुई थी । वे सबसे पहले कुएँ के पास गये और स्नान किया । इसके बाद उन्होंने एक वट वृक्ष के नीचे समाधि ले ली और जपुजी साहिब का पाठ किया ।[112] अन्त में उन्होंने भगवान का नाम लेते हुए उसकी शान में शीश नवाया। जल्लाद जलालुद्दीन[113] तलवार लेकर पहले से ही तैयार था । गुरू तेगबहादुर के शीश झुकाते ही जल्लाद ने तलवार के वार से उनका सिर धड़ से अलग कर दिया । यह करुण दृश्य वहाँ एक विशाल जनसमुदाय ने आँखों में आँसू भर कर देखा।[114] इस भव्य कुर्बानी के लिए आज भी आपको शहीदों के सिरमोर, धर्म की चादर, या हिन्द की चादर जैसे विशेषणों के प्रयोग द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है ।[115]

111. फौजा सिंह, मिलिट्री सिस्टम ऑफ द सिक्खस्, पृ0– 89
112. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू तेगबहादुर, पृ0– 45
113. गुरमत मिशनरी कॉलिज नई दिल्ली, दस गुरू साहिबान, पृ0– 113
114. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू तेगबहादुर, पृ0– 45
115. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, गुरू तेगबहादुर– जीवन तथा रचना, पृ0– 16

दिल्ली के चांदनी चौक में जिस स्थान पर गुरू तेगबहादुर शहीद हुए थे, वहाँ पर आज उनकी स्मृति में एक भव्य गुरूद्वारा स्थापित है, जो शीशगंज के नाम से विख्यात है।[116]

जब गुरू तेग बहादुर पर तलवार से वार किया गया, तब जोरदार आँधी चली थी, आकाश में बादल जोरों से गरजे थे और बिजली कौंध गई थी । चारों ओर त्राहि–त्राहि का शोर मच गया था । इस हालत का फायदा उठाकर भाई चेता ने गुरूजी का शीश अपने कब्जे में कर लिया । वह शहीदी के अवसर पर चाँदनी चौक में भीड़ के बीच खड़ा था । वह यह पवित्र शीश सीधे आनन्दपुर ले गया, जहाँ उसका विधिवत् अन्तिम संस्कार कर दिया गया। इसकी स्मृति में आनन्दपुर में भी गुरूद्वारा शीश गंज कायम है ।

गुरू तेगबहादुर का धड़ मक्खनशाह के रिश्तेदार तथा भाई उदा मिलकर उठा ले गये । उन्होंने धड़ ले जाकर अपनी झोपड़ी में रखा । फिर हुकूमत के डर से उन्होंने झोपड़ी को ही जलाकर गुरूजी के पवित्र धड़ का विधिवत् अन्तिम संस्कार कर दिया। यह स्थान नई दिल्ली में पार्लियामेंट के सामने ही है । इस स्थान पर गुरूद्वारा रकाबगंज उनकी पावन स्मृति में स्थापित है ।

गुरू तेगबहादुर के बलिदान के पीछे वास्तविक कारण राजनैतिक था या धार्मिक, इसके बारे में भी विभिन्न मत हैं । एक मत के अनुसार अपने पिता हरगोविन्द की तलवार के प्रति उनके हृदय में जितनी श्रद्धा थी तथा जिस ढंग से उन्होंने अपने अनुयायियों को बार–बार उस तलवार के उत्तराधिकारी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया था, उससे यही आभास मिलता है कि उनमें राजसी प्रवृत्ति अधिक थी, धर्म–गुरूओं जैसी कम ।[117]

एक और मत के अनुसार गुरूजी हजारों सैनिकों का नेतृत्व करते थे और स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की महत्वाकांक्षा रखते थे ।[118] इस कथन से यह सिद्ध होता है कि गुरूजी राजनैतिक क्रान्तिकारी थे । ट्रम्प भी गुरूजी मृत्यु के पीछे राजनैतिक कारण बताता है।[119]

116. प्रियदर्शी प्रकाश गुरू तेगबहादुर पृ0– 45
117. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0– 58
118. गुलाम हुसैन, सियार–उल–मुताखरिन, भाग–1, पृ.0–112
119. ट्रम्प, आदि ग्रन्थ, पृ0– 1

कुछ लोगों का विचार है कि गुरूजी के अनुयायी उन्हें सच्चा पातशाह पुकारते थे। परिस्थितियों के अनुसार इस उपाधि को किसी भी रूप में ग्रहण किया जा सकता था और इसी उपाधि ने ही अनेक विवादों को जन्म दे दिया था । इस उपाधि के रहस्यवादी प्रयोगों के कारण ही सम्भवतः मुगल सरकार को गलतफहमी हो गई थी । वे इस भ्रम के शिकार हो गये थे कि सिक्ख गुरू विद्रोही प्रवृत्ति रखते थे । गुलाम हुसैन भी इसी भ्रम के प्रभाव में आकर उपरोक्त कथन लिखता है ।

परन्तु कुछ इतिहासकार इन विचारों से सहमत नहीं हैं। उनके विचारानुसार हमें निश्चयपूर्वक बताया गया है कि गुरू तेगबहादुर शान्तिप्रिय व्यक्ति थे और गुरू बनने से पहले वे पूर्ण उदासी का जीवन व्यतीत करते थे । वे अपने आपको तेगबहादुर के स्थान पर देगबहादुर कहलाना अधिक पसन्द करते थे । उनकी सहिष्णुता तथा शान्तिप्रियता का ज्ञान उनके उस व्यवहार से होता है, जो उन्होंने अपने विरुद्ध षडयंत्रकारी सम्बन्धियों तथा मसन्दों के साथ किया था । इसके अतिरिक्त उनकी वाणी उनके स्वभाव का प्रमाण है । इन बातों के होते हुए उपरोक्त लेखकों के विचारों को स्वीकार करना कठिन हो जाता है, जिन्होंने इस घटना के दो सौ वर्षो से भी अधिक समय बाद इसके सम्बन्ध में लिखा है।[120] इस प्रकार अनेक शोधकर्ताओं ने कनिंघम तथा ट्रम्प के विचारों को गुरूजी के स्वभाव के प्रतिकूल समझकर स्वीकार नहीं किया है ।

श्री गुरू गोविन्द सिंह अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' में अपने पिता के बलिदान के सम्बन्ध में स्वयं लिखते हैं कि उनके पिता ने 'तिलक तथा जंगू' की रक्षा के लिए बलिदान दिया था। उन्होंने अपना बलिदान सहर्ष दिया और वे अपने धर्म से तनिक भी विचलित नहीं हुए। इससे यह सिद्ध होता है कि गुरू तेगबहादुर ने पीड़ित हिन्दुओं को औरंगजेब के जुल्म और अत्याचार से बचाने के लिए बलिदान दिया ।[121]

---

120. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग–2, पृ0–63
121. श्री गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक, पृ0– 34

"तिलक जंजू राखा प्रभ ताका ।
कीनों बड़ो कलू महि साका ।
साधनि हेत इति जिनि करी ।
सीस दिया पर सी न उघरी ।
धर्म हेत साका जिन किया ।
सीस दिया पर सिरर न दिया ।"

इस प्रकार यह कहना कि गुरू तेगबहादुर का बलिदान राजनैतिक कारणों से हुआ, वास्तविकता को झुठलाना है । मुसलमान तथा अंग्रेज लेखकों के बताये हुए राजनैतिक कारण गुरू तेगबहादुर के जीवन, स्वभाव तथा उनके उद्देश्यों से मेल नहीं खातें । गुरू तेगबहादुर के बलिदान की सूचना पाकर मुगल बादशाह औरंगजेब उदास हो गया और उसने अनुभव किया कि गुरू जी ने मुझ पर एक लांछन लगा दिया है ।[122] वह यह सोचने लगा कि मैं भी कुछ ही दिन का मेहमान हूँ । दरबारियों द्वारा प्रोत्साहन देने के बाद भी वह पुनः पूर्ण शान्ति प्राप्त न कर सका ।[123]

इतिहास साक्षी है कि गुरू तेगबहादुर की शहीदी के बड़े महत्वपूर्ण परिणाम हुए। समूचे भारत की बलहीन जनता उद्बुद्ध हुई और अनिश्चित् मन स्वाभिमानी हो गये । गुरू गोविन्द सिंह ने गद्दी पर विराजमान होते ही निर्णय लिया कि वे सिक्खों में नये प्राण फूँक देंगे, ताकि वे गीदड़ों से शेर और चिड़ियों से बाज बन सकें और स्वाभिमानपूर्वक जीवन जी सकें । इसी आशय की पूर्ति हेतु गुरू गोविन्द सिंह ने खालसा की स्थापना की । खालसा ने मुगलों से देश को आजाद कराने के लिए जो भव्य कार्य किये, उनका प्रमाण इतिहास के पन्नों में उपलब्ध है । यह सब कुछ गुरू तेगबहादुर जी की ही अद्वितीय देन थी ।[124]

गुरू तेगबहादुर का बलिदान उनके कार्यो से अधिक महत्वपूर्ण था, इसके कारण उनका सम्मान समस्त भारत में होने लगा । राजपूत उनका बहुत सम्मान करते थे तथा पंजाब के जाट तो उनकी पूजा करते थे । इस प्रकार जब उनके नेता को, जिनका प्रमुख लक्ष्य निर्दोष जनता की रक्षा करना था, मृत्युदण्ड दिया गया तो सारा पंजाब बदले की भावना से भड़क उठा ।[125]

---

122. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 388
 गुरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक,
 "ठीकरि फोरि दिलीस सिर, प्रभु पुर किया पयान ।
 तेग बहादुर सी क्रिया, करी न किनहूँ आन ।।"
123. मैकालिफ, द सिक्ख रिलीजन, भाग—4, पृ0— 388
124. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, श्री गुरु तेगबहादुर— जीवन तथा रचना,पृ0— 16
125. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ द सिक्खीज़्म, पृ0—71

गुरू अर्जुनदेव के बलिदान ने यह सिद्ध कर दिया था कि सिक्खों को नाम अपने के साथ—साथ शस्त्रधारी भी बनना पड़ेगा । गुरू तेगबहादुर के बलिदान ने फिर यही निर्णय दोहरा दिया कि शस्त्र धारण किये बिना स्वाभिमान का जीवन व्यतीत करना असम्भव है। इसके साथ ही गुरू तेगबहादुर को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य न कर पाने से यह भी सिद्ध हो गया कि हिन्दुओं को मुसलमान बनाना असम्भव है ।

गुरू तेगबहादुर की शहादत ने सिक्खों के खून में आग के शोले भर दिये । दसवें तथा अन्तिम गुरू, गोविन्द सिंह के रूप में उन्हें एक अत्यन्त ही योग्य, वीर एवं कर्मठ नेता मिल गया, जिन्होंने मुगलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर पंजाब के कण—कण में विद्रोह की चिंगारी सुलगा दी । गुरू तेगबहादुर की शहादत का सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि मुगल साम्राज्य के विरुद्ध एक क्रान्ति दौड़ गई और सन् 1699 ई0 में खालसा का जन्म हुआ। अब सिक्खों और मुगलों के बीच खुले संघर्ष को कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती थी ।

गुरू गोविन्द सिंह ने एक बहुत बड़ी सेना रखनी प्रारम्भ कर दी । और मुगलों के विरुद्ध कई युद्ध किये । उनके बाद बन्दा सिंह बहादुर ने यह क्रम जारी रखा । अन्ततः मुगल साम्राज्य समाप्त हो गया और सिक्ख राज्य, महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में, अपनी पराकाष्ठा को जा पहुँचा ।

अतः मुगल बादशाह की स्वयं की नीति के कारण, सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध आने वाले वर्षों में स्वयं मुगल साम्राज्य के लिए ही घातक सिद्ध हुए और मुगल साम्राज्य के अन्त का कारण बने ।

****

(5) मुगल बादशाह औरंगजेब की सिक्खों के प्रति नीति :

औरंगजेब ने सन् 1658 ई0 में सिंहासन पर अधिकार किया । वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और शरीयत में दृढ़ विश्वास रखता था । औरंगजेब जब राजकुमार ही था, तो वह ख्वाजा मौहम्मद मौजम के सम्पर्क में आया, जो मुजाहिद–अल्फ–ए–सानी का पुत्र था । ये पिता व पुत्र दोनों ही कट्टर सुन्नी मुसलमान थे और नक्शबन्दी आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे ।[126] औरंगजेब उनका शिष्य बन गया । राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् उसने अकबर की सुलह–कुल की नीति को पूर्णतः त्याग दिया । वह सोचता था कि अकबर के काल में उसकी उदार नीति से इस्लाम को हिन्दुस्तान में बहुत धक्का लगा है । इस प्रकार औरंगजेब भारत में इस्लाम धर्म को पुनर्जीवित करने के बारे में सोचने लगा ।[127] उसके विचार में इस लोभ की दुनिया में सर्वश्रेष्ठ धर्म था, अतः सभी काफिरों को इस्लाम की शरण में लाना वह अपना धार्मिक कर्तव्य समझता था ।

मुगल साम्राज्य का प्रमुख हिन्दू सामन्त जोधपुर–नरेश महाराजा जसवन्त सिंह, जोकि औरंगजेब के धरमत के मैदान में लड़ा था और जिसने खजुआ में उसके डेरों को खूब लूटा था, 20 दिसम्बर 1678 ई0 को[128] जमरौद में स्वर्ग सिधार गया। बादशाह औरंगजेब ने उसे अफगानिस्तान में जमरौद में मुगल चौकियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया था। औरंगजेब राजपूतों से घृणा करता था, परन्तु जब तक भारत में मिर्जा राजा जय सिंह तथा राजा जसवन्त सिंह जैसे शक्तिशाली नरेश जीवित रहे, वह हिन्दुओं को नष्ट करने की अपनी नीति को खुल्लमखुल्ला व्यवहार में न ला सका । इस कारण जोधपुर–नरेश की मृत्यु पर मुगल बादशाह औरंगजेब को प्रसन्नता हुई ।[129]

इसके अतिरिक्त औरंगजेब ने मारबाड़ को मुगल साम्राज्य में मिला लिया । सम्भव था कि स्वतंत्र मारवाड़ बादशाह की नीति का विरोध करके उसे असफल बना देता, अतः मारवाड़ पर आधिपत्य प्राप्त करके औरंगजेब 12 अप्रैल 1679 ई0को दिल्ली लौट आया

---

126. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 178
127. वही, पृ0 179
128. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000—1707), पृ0— 641
129. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000—1707), पृ0— 641

और उसने उसी दिन हिन्दुओं पर 'जजिया' पुनः लगा दिया, जिससे कि एक शताब्दी से कुछ समय पहले अकबर ने हिन्दुओं को मुक्त कर दिया था ।[130]

इसके अतिरिक्त औरंगजेब नक्शबन्दी आन्दोलन के भी पूर्ण प्रभाव में था । उसने सभी धर्मों और सम्प्रदायों के साथ कठोरता का व्यवहार प्रारम्भ कर दिया । उसने अपने मुसलमान सूबेदारों को सूचना दी कि "मैं चाहता हूँ कि सारा हिन्दुस्तान उसी मजहबी झण्डे के नीचे आ जाए जो अरब की पवित्र भूमि में पैदा हुआ था और जिसने अपने जाहों–जलाल से संसार को चकाचौंध कर रखा है । हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद के जितने भी तरीके हैं, काम में लाना चाहिए । मैं इसे महान् पवित्र काम समझता हूँ।" इस नीति से सारे देश में अन्याय व अत्याचार का राज्य स्थापित हो गया । हिन्दू जनता को इस्लाम या मृत्यु का निमन्त्रण दिया जाने लगा ।

औरंगजेब ने आज्ञा दी कि सभी पुराने मन्दिर गिरा दिये जायें, नये मन्दिरों के निर्माण को रोक दियाजाये और पुराने मन्दिरों की मरम्मत न करने दी जाये।[131] अकेले राजपूताना में ही 300 मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये ।[132] मुल्तान और मथुरा के मन्दिर भी गिरा दिये गये । वेशवराय के प्रसिद्ध मन्दिर को गिराकर मस्जिद खड़ी कर दी गई । वाराणसी के विश्वनाथ और गोपीनाथ के मन्दिर भी गिराकर मस्जिदें बनवा दीं । जजिया पुनः लागू कर दिया गया ।[133]

औरंगजेब ने आज्ञा दी कि सिक्खों के मन्दिरों को भी गिरा दिया जाये और मसन्दों को नगरों से निष्कासित कर दिया जाये ।[134] इस प्रकार उसने सिक्खों के साथ भी हिन्दुओं जैसी धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई ।

मुगल बादशाह औरंगजेब ने सिक्खों के सातवें गुरू श्रीगुरू हरिराय को दिल्ली बुला भेजा, क्योंकि गुरूजी ने मुगल–उत्तराधिकार के युद्ध में दाराशिकोह से सहानुभूति प्रगट

---

130. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, (1000–1707), पृ0– 641
131. श्रीराम शर्मा, द रिलीजस पॉलिसी ऑफ द मुगल इम्परर्स, पृ0– 130
132. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 180
133. भागी, कल्चर ऑफ मेडिकल इण्डिया, पृ0– 110
134 जे0एन0 सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग 3, पृ0– 212

की थी । गुरूजी ने स्वयं न जाकर अपने बडे पुत्र रामराय को भेज दिया । रामराय चतुर एवं महत्वाकांक्षी युवक था । वह मुगल बादशाह के प्रभाव में आ गया । मुगल बादशाह ने उसे देहरादून की जागीर दे दी ।

गुरू हरिराय अपने छोटे पु.त्र हरिकृष्ण को गद्दी देकर परलोक सिधार गये । रामराय ने उत्तराधिकार के लिए संकट खडा कर दिया । औरंगजेब ने बालगुरू हरिकृष्ण को दिल्ली बुलाया, जहा सन् 1664 ई0 में शीतला से पीडित होकर उनका देहान्त हो गया । लेकिन मुगल बादशाह औरंगजेब ने सिक्खों का पीछा नहीं छोड़ा । यह वही सिक्ख थे, जिन्हें औरंगजेब के दादा जहांगीर ने खत्म कर देने या इस्लाम कें परिवर्तित कर देने का इरादा किया हुआ था ।[135] इस प्रकार औरंगजेब अपने दादा जहांगीर से ज्यादा कट्टर था । उसने सिक्खों के सातवें गुरू तथा आठवें गुरू को दिल्ली बुलाने के बाद अब नौवें गुरू श्री गुरू तेगबहादुर को भी दिल्ली बुला भेजा । पहले उसने गुरू तेगबहादुर को गिरफ्तार करके कैद करने का आदेश भेजा, तत्पश्चात् कत्ल कर देने का आदेश भेज दिया । इस प्रकार गुरू तेगबहादुर का बलिदान सिक्खधर्म की लहर को समाप्त करने के उस विचार की एक कड़ी बन जाता है, जो जहांगीर अपनी आत्मकथा 'तुज्क–ए–जहांगीरी' में लिख गया था और जिससे औरंगजेब अपरिचित नहीं हो सकता था ।[136]

परन्तु गुरू तेगबहादुर के बलिदान के पश्चात् औरंगजेब के काल के अन्तिम वर्षो में मुगल–प्रशासन की नीति में परिवर्तन आ गया और कुछ समय तक सिक्खों के प्रति निर्हस्तक्षेप की नीति का पालन किया गया । परन्तु जब गुरू गोविन्द सिंह के नेतृत्व में सिक्ख –संगठन प्रतिक्रियास्वरूप पुनः क्रियाशील हुआ, तो दिल्ली और सिक्खों के मध्य एकबार फिर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी ।

****

135. तुज्क–ए–जहांगीरी, पृ0– 35
136. डा0 गंडासिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0– 39

(6) सिक्ख–मुगल–संघर्ष के सन् 1607 से 1675 तक के परिणाम:

सन् 1607 से 1675 ई0 तक का काल जहां सिक्खधर्म के विकास के दृष्टिकोण से प्रमुख है, वहीं मुगल प्रशासन के स्थायित्व के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है । सन् 1607 ई0 से पूर्व के काल में उभरता हुआ सिक्खधर्म पूर्णतः धार्मिक स्वरूप लिए हुए था तथा मुगल बादशाह अकबर की सुलह–कुल की नीति के परिणामस्वरूप सिक्खमत के धार्मिक बल एवं मुगल राज्य के राजनैतिक बल में टकराव की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी। परन्तु अकबर के उत्तराधिकारियों के काल में शनैः–शनैः सुलह–कुल की नीति को त्यागकर असहिष्णुतापूर्ण नीति को अपनाया गया, जिसकी चरम परिणति औरंगजेब के प्रशासन में हुई । इस परिवर्तित नीति के फलस्वरूप न केवल सिक्ख–मुगल–संघर्षों का ही प्रादुर्भाव हुआ, अपितु सिक्ख संगठन का स्वरूप भी परिवर्तित होना शुरू हो गया । अब इस धर्म में धार्मिक–तत्वों के साथ– साथ सैनिक तत्वों का भी समावेश होना प्रारम्भ हो गया । इसी के साथ सिक्ख–संगठन में स्नेह एवं त्याग की परम्परागत भावना के साथ–साथ बलिदान की भावना का भी उदय हुआ, जिसका सर्वप्रथम समग्र उदाहरण सिक्खगुरू अर्जुनदेव ने प्रस्तुत किया ।

गुरू अर्जुनदेव सिक्खमत के केवल महान प्रबन्धक ही नहीं थे, बल्कि शहीदी के ताज को पाने वाले भी प्रथम थे । उन्होंने बलिदान देने की नींव रखी, जिसे सिक्खों ने आगे बढ़ाया और जिससे उनके कार्यों को एक नयी दिशा मिली जो उनके इतिहास में एक परिवर्तित केन्द्र बिन्दु था ।[137] गुरू अर्जुनदेव के बलिदान से सिक्ख तिलमिला उठे और मुगल साम्राज्य के प्रबल शत्रु के रूप में खडे हो गये ।

गुरू अर्जुनदेव के बलिदान ने यह सिद्ध कर दिया था कि अब सिक्खों को नाम जपने के साथ–साथ शस्त्रधारी भी बनना पड़ेगा । गुरू तेगबहादुर के बलिदान ने फिर यह निर्णय दे दिया कि शस्त्र धारण किये बिना स्वाभिमान का जीवन व्यतीत करना असम्भव है।

षष्ठ गुरू हरगोविन्द के काल में सिक्खों को इस यथार्थ का ज्ञान हो गया था

137. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑफद पंजाब, भाग–1, पृ0– 164

कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हें शक्ति एकत्रित करनी होगी । अतः सिक्खों की इसी भावना के परिणामस्वरूप उनमें हिंसात्मक प्रवृत्ति और शक्ति–संगठन का आरम्भ हुआ । इस सैनिक प्रवृत्ति के कारण उनके कार्यकलापों में भी परिवर्तन हुआ और वे युद्धप्रिय कार्यों की ओर आकर्षित हुए । इसी प्रवृत्ति के कारण और मुगल बादशाहों की नीतियों के कारण सिक्ख –मुगल–संघर्ष सामने आया । शाहजहां के समय में सिक्खों ने गुरू हरगोविन्द के नेतृत्व में मुगलों के साथ पांच छोटी–बड़ी लड़ाईयाँ लड़ीं और विजय प्राप्त की ।[138] ये सभी लड़ाईयाँ रक्षात्मक थीं ।

इनका परिणाम यह निकला कि अब सिक्ख यह सोचने लगे कि थोड़ा और संगठित होकर वे मुगलों से बड़े पैमाने पर भी युद्ध कर सकते हैं । गुरू हरगोविन्द के पश्चात् गुरू हरिराय सिक्खों के सातवें गुरू नियुक्त हुए। वे शान्तिप्रिय स्वभाव के थे। उनके शाहजहां के साथ मधुर सम्बन्ध बने रहे । सन् 1658 ई0 में औरंगजेब के बादशाह बनने के साथ मुगलों ने सभी धर्मों व सम्प्रदायों के साथ कठोरता का व्यवहार शुरू कर दिया । उसने सिक्खों के सातवें गुरू तथा आठवें गुरू को दिल्ली बुलवाया और उनके उत्तराधिकार में दखल दिया ।

परन्तु जब उसने सिक्खों के नौवें गुरू, गुरू तेगबहादुर को भी दिल्ली बुलवाकर मृत्युदण्ड दे दिया, तो इस बलिदान के बहुत से तात्कालिक तथा दूरगामी परिणाम निकले । गुरू तेगबहादुर की मृत्यु दो विरोधी विचारधाराओं के संघर्ष का सीधा परिणाम थी । एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व उस समय का शक्तिशाली मुगल बादशाह औरंगजेब का रहा था, जोकि दारूल–हर्ब को दारूल–इस्लाम में बदलने के लिए दृढ़– संकल्प था । दूसरी विचारधारा एक सन्त फकीर गुरू तेगबहादुर की थी, जो हर मनुष्य को धर्म की स्वतंत्रता देने के लिए अपनी जान तक की बाजी लगाने को तैयार थे ।[139]

औरंगजेब अपने समय का बहुत शक्तिशाली मुगल बादशाह था, लेकिन वह भी

138. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 165–166
139. गुरूबख्श सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0– 107

गुरू तेगबहादुर की शहादत से प्रभावित हुए बिना न रह सका । वह जानता था कि यह शहीदी उसी के आदेश द्वारा हुई है, अतः वह बहुत उदास और अशान्त रहने लगा । दरबारियों द्वारा प्रोत्साहन देने पर भी वह पुनः पूर्ण शान्ति प्राप्त न कर सका ।[140]

औरंगजेब ने राजपूत राजा जसवन्त सिंह राठौर के साथ एवम् उसकी रानियोंतथा पुत्रों के साथ भी बहुत बुरा व्यवहार किया और लाहौर का शासन–प्रबन्ध एक क्रूर सूबेदार क्वामुद्दीन को सौंप दिया ।[141]

औरंगजेब को लिखे गये गुरू गोविन्द सिंह के जफरनामे से तथा स्वयं अपने पुत्रों को लिखे गये औरंगजेब के पंदनामे से यह सिद्ध होता है कि औरंगजेब अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने पिछले कारनामों को सोचकर अपनी असफलता का कायल हो चुका था और उसकी इस असफलता में बहुत बड़ा भाग गुरू तेगबहादुर का था ।[142]

गुरू तेगबहादुर की शहीदी के कुछ ही महीनों के पश्चात् औरंगजेब पर कातलाना हमले होने शुरू हो गये । जब औरंगजेब जामियां मस्जिद से नमाज पढ़कर आ रहा था, तो एक हमलावर ने उस पर दो ईटें फेंकी । दूसरे हमलावर ने उस पर लकड़ी से वार किया । तीसरे हमलावर ने औरंगजेब के ऊपर तलवार से वार किया, जिससे उसके साथी मुकरम खान की उँगली कट गयी ।[143]

गुरू तेगबहादुर की शहीदी का उनके इकलौते पुत्र गुरू गोविन्द सिंह पर गहरा प्रभाव पड़ा । वे अपने पिता की मृत्यु के समय अभी नौ वर्ष के ही थे । गुरू तेगबहादुर ने ऐसा कोई सन्देश अपने पुत्र को नहीं भेजा, जिसमें उनकी शहादत का बदला लेने की बात की गयी हो। गुरू गोविन्द सिंह ने धैर्य से काम लिया और उन्होंने अपना ध्यान रचनात्मक कार्यो की ओर दिया । उन्होंने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध संगठन प्रारम्भ किया और सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक भ्रष्टाचार के उ स युग में उन्होंने सादगी, एवं ध्येयता तथा

140. मैकालिफ,द सिक्ख रिलीजन, भाग–4, पृ0– 388
141. गुरूबख्श सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0– 108
142. गुरूबख्श सिंह, वही, पृ0– 108
143. वही, पृ0– 112

दृढ़—इच्छाशक्ति की शिक्षा देनी प्रारम्भ की ।[144]

गुरू तेगबहादुर के बलिदान के परिणामस्वरूप, अन्तिम गुरू—गुरू गोविन्द सिंह ने एक विशाल सेना का संगठन करना प्रारम्भ किया । वे मुगलों की प्रतिक्रियावादी नीति का विरोध करने के लिए दृढ़—संकल्प हो गये । अपने पिता की पाशविक मृत्यु उनकी आँखों के सामने नाच रही थी । इस प्रकार सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध अब खुले युद्ध के रूप में प्रगट हुए।

गुरू तेगबहादुर की शहादत मुगल साम्राज्य पर सिक्खों के अनवरत प्रहारों का कारण बन गयी और अपने गुरू के सिर के बदले, सिक्ख मुगलों के सिर लेने पर उतारू हो गये । विरोध की इतनी भयंकर आंधी चली कि मुगल साम्राज्य ताश के पत्ते की भाँति बिखरने लगा ।

अतः मुगल बादशाह की स्वयं की नीति के कारण ही स्थापित सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध भविष्य में मुगल साम्राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुए और मुगल साम्राज्य के अन्त का एक कारण बने । सिक्खों के इन प्रहारों के फलस्वरूप पंजाब में तो मुगल शासन, शेष भारत में अपने अन्त से लगभग एक सदी पूर्व ही, समाप्त हो गया था ।[145]

---

144. कनिंघम्, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स, पृ0— 84
145. गुरूबख्श सिंह, गुरू तेगबहादुर सिमरती ग्रन्थ, पृ0— 114

——00——

चतुर्थ–अध्याय

।। सिक्खों का सैनिक एवं राजनैतिक संगठन ।।

(1675 से 1708 तक)

(1) श्री गुरू गोविन्द सिंह द्वारा शान्तिप्रिय सिक्खों से सशस्त्र खालसा का निर्माण :

यद्यपि मुगल सम्राट अकबर के काल के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों– जहांगीर एवं शाहजहां के शासनकाल में सिक्ख एवं मुगल सम्बन्धों के मध्य स्थिति संघर्षमय ही रही, परन्तु सैन्य संगठन के अभाव एवं राजनीति से विमुख रहने के कारण सिक्खों को ही मुगलों के द्वारा हानि उठानी पड़ी । इसकी पृष्ठभूमि में मुगल प्रशासन की सशक्तता भी मूल कारण थी । पर इन घटनाओं के उपरान्त सिक्ख कर्णधार इस आवश्यकता को भली प्रकार अनुभव कर रहे थे कि यदि सिक्खों को अपनी अलग पहचान बनाकर रहना है, तो संघर्ष अनिवार्य है, एवं पूर्व स्थापित सशक्त प्रशासन से टकाराने के लिए एक दृढ़ सैन्य संगठनात्मक आधार का होना भी आवश्यक है । यदि स्थिति को मुगल दृष्टिकोण से देखा जाये, तो वे क्यों इस बात के लिएतत्पर हो जाते कि उनके साम्राज्य के भीतर ही एक अन्य शक्ति खड़ी हो जाये । अतः इस नव–उत्पन्न शक्ति को कुचल देना ही उनके लिए श्रेयस्कर था। पर उभरती हुई इस नवशक्ति के प्रभाव को नगण्य करने के लिए एक ओर अकबर ने शान्तिमय प्रयास किया था और इस वर्ग को विश्वास में लेकर उनके प्रभाव एवं प्रसार को कम महत्वपूर्ण बना दिया था । दूसरी ओर उसके उत्तराधिकारियों ने इसको प्रभावहीन करने के लिए शक्ति का सहारा लिया और ये काफी सीमा तक सफल भी हुए, पर हिंसा की इस प्रक्रिया ने एक ऐसा क्रम प्रारम्भ कर दिया, एक ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी, जिससे आने वाले वर्षो में सिक्ख व मुगलों को परस्पर कट्टर विरोधी बना दिया । विरोध की इस प्रक्रिया ने ही सिक्ख संगठनात्मक ढर्रे को जन्म दिया, जिसके निर्माण में सिक्खों के दशम गुरू गोविन्द सिंह ने सक्रिय भूमिका निभाई ।

श्री गुरू गोविन्द सिह का जन्म 22 दिसम्बर सन् 1666 ई0 को[1] पटना में माता गुजरी जी की पवित्र कोख से हुआ था । इस समय इनके पिता गुरू तेगबहादुर पूर्वी भारत में धर्म–प्रचार के लिए गये हुए थे। गुरू गोविन्द सिंह का बचपन का नाम गोविन्दराय रखा गया।

---

1. कृपया देखिए परिशिष्ट– (घ)

गोविन्दराय का बाल्याकाल घटना में व्यतीत हुआ। बचपन से ही उन्हें खेलकूद में ज्यादा रुचि थी । बाल्यावस्था में जो खेल उन्हें सबसे अधिक रुचिकर था, वह युद्ध का खेल खेलना था ।[2] बच्चों के साथ मिलकर वे सैनिकों का खेल खेलते, युद्ध का नाटक करते और अस्त्रों–शस्त्रों का संचालन करते । ऐसे खेलों में वे सदैव सेनापति ही बनते थे । सबसे विचित्र बात यहथी कि इन नकली लड़ाईयों में भी उन्होंने कभी पराजित होना नहीं सीखा था। बाल्यकाल से ही गुरू गोविन्द सिंह अत्यधिक चंचल थे । छेड़खानी करने और लोगों को तंग करने में उन्हें विशेष मजा आता था।[3] एक दिन वे लड़कों के साथ खेल रहे थे और उस ओर से पटना के नबाब की सवारी गुजरी। चौवदार ने लड़कों को देखकर कहा कि नबाब साहब की सवारी आ रही है, उन्हें सलाम करो । गोविन्दराय ने लड़कों को सम्बोधन करके कहा कि सलाम नहीं करना, वरन् उसको मुँह चिढ़ाना लड़कों ने वैसा ही किया और भाग गये । बचपन से ही वे बड़े निर्भर व चंचल थे । वे गुलेलबाजी के भी बड़े शौकीन थे।

पटना में जब तक माल गुरू रहे, अपने कार्यकलापों से सबको अभिभूत करते रहे। गुरू तेगबहादुर उन दिनों आसाम व बंगाल की यात्रा पर थे, लेकिन उनके अभाव में भी ऐसा लगता था कि मानो पुत्र ने ही अपने सत्कार्यों से उस क्षेत्र में पिता गुरू की कमी दूर कर रखी थी। बाल गुरू के बाल्यकाल के इन कार्यकलापों से ही यह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता था कि उन्हें भविष्य में उत्तराधिकार में महान् दायित्व मिलने वाला था, उसे निभाने की शुरूआत उन्होंने छोटी आयु में ही आरम्भ कर दी थी।[4]

इसी बीच गुरू तेगबहादुर आसाम व बंगाल की यात्रायें पूरी करके पटना लौट आये । उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति की सूचना आसाम में ही मिल गयी थी । पटना आकर जब पुत्र का दर्शन किया, तो उनकी आत्मा से आवाज आई कि यह तो भगवान् का ही प्रतिरूप है । कुछ दिनों तक गुरू तेगबहादुर पटना में ही रहे । फिर उन्होंने पंजाब जाकर आनन्दपुर में बसने का विचार किया। आनन्दपुर की नींव उन्होंने ही डाली थी ।

---

2. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह,पृ0— 14
3. वही, पृ0— 14
4. वही, पृ0— 28

इस प्रकार गुरू तेगबहादुर अपने परिवार को पटना में ही छोड़कर अकेले ही पंजाब आ गये । आनन्दपुर आकर उन्होंने पटना से अपना परिवार भी बुला लिया । पटना वालों ने बाल गुरू को बड़ी ही भावभीनी विदाई दी ।[5]

बाल गुरू के आनन्दपुर पहुँचते ही हर्ष की लहर दौड़ गई । सारे नगर में दीप जलाकर प्रकाश किया गया । भारी संख्या में लोग बाल गुरू के दर्शन करने आने लगे । गोविन्दराय अभी बच्चे ही थे कि गुरू तेगबहादुर ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया ।

गोविन्दराय को पढाने के लिए उच्चकोटि के शिक्षक नियुक्त किये गये । गुरू तेगबहादुर ने उन्हें श्रेष्ठ शिक्षा देने के समुचित प्रयास किये ।[6] उन्होंने गोविन्दराम को धार्मिक विद्या के साथ सब प्रकार युद्ध विद्या, शस्त्र विद्या और घुड़सवारी भी सिखायी । फारसी पढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, ब्रजभाषा का अध्ययन भी कराया । जिस प्रकार की विद्या उनके पिताजी ने उनको दूरदर्शिता के साथ दिलवायी उसका फल गुरू गोविन्द सिंह के जीवन में बहुत ही गुणकारी सिद्ध हुआ । वे इतने मेधावी थे तथा उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि वे जो भी पाठ एकबार पढ़ लेते,उसे कभी भूलते नहीं थे। यही कारण था कि उन्होंने जल्दी ही इन भाषाओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया। उनकी पढ़ने, लिखने और सीखने की अभिलाषा इतनी तीव्र थी कि यह सिलसिला आजीवन ही चलता रहा। आगे चलकर गुरू गोविन्द सिंह एक उच्च कोटि के विद्वान, श्रेष्ठ लेखक और महान् विचारक बने ।[7]

बचपन में वे पढ़ाई—लिखाई से निबट कर अपने युद्ध—खेलों का अभ्यास करते। गुरू तेगबहादुर ने भी अपने पुत्र के इस शौक को प्रोत्साहन दिया । उन्होंने बाकायदा अच्छे शिक्षकों की व्यवस्था कर गोविन्दराय को तीरन्दाजी, तलवारबाजी, अस्त्र—शस्त्र—संचालन

5. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह,पृ0— 30
6. श्रीगुरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक (हिन्दी), पृ0— 45
"भद्र देश हमको ले आए, भाँति—भाँति दाई अनि दुलराए ।
कीनी अनिक भाँति तन रक्खा, दीनी भाँति—भाँति की तिच्छा ।।"
7. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह,पृ0— 31

और युद्ध कौशल का अभ्यास कराया । घुड़सवारी तथा शिकार खेलने में भी उन्हीं कुशल बनाया गया । बाल्यकाल की शिक्षाओं का यह परिणाम निकला कि भविष्य में वे एक सफल सेनापति और दुर्धर्ष योद्धा के रूप में विख्यात हुए ।[8]

इस प्रकार बालगुरू गोविन्दराय आयु की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए लगभग नौ वर्ष के हो गये । पिता गुरू तेगबहादुर ने आने वाले कठिन समय के लिए इनको प्रत्येक सम्भावना को ध्यान में रखते हुए स्थिति से निपटने के लिए निपुण कर दिया ।[9]

इस समय भारतवर्ष में मुगल बादशाह औरंगजेब शासन पर आसीन था । वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था तथा हिन्दुस्तान को मोमिनों की धरती बनाने के लिए भरसक प्रयास कर रहा था । इन्हीं दिनों गुरू तेगबहादुर को काश्मीरी पण्डितों की सहायता के आरोप में गिरफ्तार करके दिल्ली लाया गया । दिल्ली में उन्हें घोर यातनाएँ दी गयीं । उन पर धर्म परिवर्तन करने के लिए दबाब डाला गया । गुरू तेगबहादुर मरते दम तक जालिमों के आगे नहीं झुके । अन्ततः 11 नवम्बर 1675 ई0 को उन्हें औरंगजेब के आदेश पर चांदनी चौक दिल्ली में शहीद कर दिया गया ।

इस समय गोविन्दराय की आयु केवल नौ वर्ष की ही थी । उन्हें विधिवत् गुरू—गद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस प्रकार वे सिक्खों के दसवें गुरू नियुक्त हुए । प्रारम्भ से ही उन्होंने धैर्य से कार्य आरम्भ किया और अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों की ओर लगाया । परन्तु अपने पिता की पाशविक मृत्यु उनकी आंखों के सामने नाच रही थी, अतः उन्होंने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध संगठन का प्रारम्भ किया । सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक भ्रष्टाचार के उस युग में उन्होंने सादगी, एक ध्येयता, दृढ़ इच्छा एवं शक्ति का पाठ पढ़ाना शुरू किया ।[10] इसके उपरान्त उनकी गतिविधियाँ एक धार्मिक वर्ग के सैन्य—वर्ग में परिवर्तन का इतिहास है ।

गुरू गोविन्द सिंह जी अपने पिता की शहीदी और अपने राष्ट्र पर ढाये गये अत्याचारों का बदला अत्याचारियों से चुकाना चाहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि अत्याचार

8. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 33
9. गुरमत मिशनरी कॉलिज, दस गुरू साहिबान, पृ0— 119
10. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स, पृ0— 84

सहती हिन्दू जाति को औरंगजेब के अत्याचारों से बचाया जाए । उनकी तीव्र इच्छा थी कि देश और धर्म का कायाकल्प किया जाये और वक्त के अत्याचारी और दुष्ट शासकों से सुरक्षित करके कौम को स्वतंत्र बनाया जाये । गुरूजी ने मातृ–भूमि की दशा को प्रत्येक पक्ष से निकम्मा पाया । एक और देश और कौम की यह दशा थी दूसरी ओर गुरू गोविन्द सिंह जी के युवा हृदय में देश प्रेम का तूफान उमड़ रहा था । धार्मिक जोश की बाढ़ रोकी नहीं जा सकती थी । देशवासियों की दुर्दशा का अनुभव करके वीर रस के जोश का प्रचण्ड होना स्वाभाविक ही था । राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न और सब धार्मिकों को विपत्तियों से छुटकारा दिलाने का विचार और देश का मलेच्छों से स्वतंत्र करने की तरंगें उनके मन में उठ रही थीं। परन्तु उसके साथ ही टक्कर लेने के लिए साधन भी कोई नहीं थे । न कोई पूँजी, न कोई साधन, न किसी की सहायता, न जीवन का अनुभव सब और से सहायता और मदद के बिना निराशा ही निराशा थी । उनके दरबार में 52 कवि थे, जो वीररस की कविताओं की रचना कर सामान्य जन में वीरता, साहस एवं शक्ति का संचार किया करते थे । गुरूजी स्वयं भी सिक्ख जनता में धर्मयुद्ध के प्रति जागृति फैलाते थे । उन्होंने ओजस्वी भाषा में हुक्मनामे लिखकर अपने अनुयायियों में वितरित किये, जिनमें उनसे धन तथा अस्त्र–शस्त्र एकत्र करने का आग्रह किया गया था । जब भी कोई दर्शनाभिलाषी दरबार में आता, तो वे उससे सिर्फ अस्त्र–शस्त्र तथा घोड़े ही लाने का अनुरोध करते । शनैःशनैः उनकी ख्याति दूर–दूर तक फैलने लगी और उनके अनुयायियों की संख्या भी निरन्तर बढ़ने लगी ।

इस प्रकार शस्त्रागार हथियारों से और घुड़शाला घोड़ों से भरने लगी । यही नहीं, 18 से 40 वर्ष की आयु के मध्य का जो भी व्यक्ति गुरूजी की सेवा में उपस्थित होता, उसे सैनिक शिक्षा देने के लिए गुरूजी अपने पास रख लेते । आनन्दपुर के पास का जंगल अब चांदमारी के काम में आ रहा था और रातदिन सैनिकों की संख्या बढ़ रही थी।

असम के राजकुमार रत्नराय ने आनन्दपुर में गुरूजी के दर्शन किये और भेंटस्वरूप एक श्वेत परसादी नाम हाथी, एक पंचकला शस्त्र, 5 बढ़िया बन्दूकें, एक कटोरी, एक चौकी, एक कलंगी, एक हार एवं ढाका की मलमल के अनेकों बढ़िया वस्त्र गुरूजी को प्रदान किये ।[11] इसी प्रकार काबुल के एक सिक्ख व्यापारी दुनीचन्द ने ढाई लाख रूपये

11. नरिन्दरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ०– 36

कीमत का एक तम्बू गुरूजी को भेंट किया । एक अन्य सिक्ख ने अपने व्यापारिक मुनाफे में से धर्मादा के दस हजार रूपये गुरूजी को भेंट किये ।

इस प्रकार सम्पत्ति, शस्त्र तथा घोड़ों आदि की भेंट से गुरू जी के पास पर्याप्त धनराशि, सैकड़ों घोड़े और भारी संख्या में हथियार एकत्र हो गये । उनका यह वैभव अनेक छोटे–मोटे नरेशों को भी मात देने बाला बन गया । गुरूजी ने एक नगारा भी बनवाया और उसका नाम रणजीत–नगारा रखा ।[12] यह एक तरह से युद्ध–नगारा था और जब भी गुरूजी शिकार पर जाते, तो यह नगारा बजाया जाता था । इसकी आवाज दूर–दूर तक जाती थी। इसके अतिरिक्त गुरूजी ने कई महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक पग भी उठाये । उन्होंने आनन्दपुर में केशगढ़, फतेहगढ़, लोहगढ़ आनन्दगढ़ तथा होलगढ़ नामक किले भी बनवाये । लेकिन गुरूजी के इन कार्यों को तुरन्त ही मुगल–विरोधी स्वीकार कर लेना, निर्णय की शीघ्रता होगी।[13]

यह कार्यक्रम ठीक गुरू हरगोविन्द की ही भाँति था, जो गुरू अर्जुनदेवकी शहीदी के बाद इसे अपनाने को बाध्य हुए थे । किन्तु अब यह विशाल पैमाने पर था । परिस्थितियाँ समान थीं, वातावरण समान था और सिक्खों पर उसका प्रभाव भी समान था। इतिहास स्वयं को दोहरा रहा था ।[14] परिस्थितियों के बारे में ऐसा कहा जा सकता है कि गुरू गोविन्द सिंह कलह में पैदा हुए, कलह में बड़े हुए और कलह में ही उनकी मृत्यु हुई । यह विरोध या कलह उन पर परिस्थितियों द्वारा ही थोपा गया और इससे वह पूर्णतः परिचित भी थे। यह एक पवित्र विरोध था । इसका लक्ष्य सुप्त लोगों को जाग्रत करना था । यह एक नये राष्ट्र के निर्माण की ओर प्रयास था । यह न्याय और स्वतंत्रता पर आधारित एक नये समाज की नींव रखने की योजना थी । इसका प्रयोजन स्वतंत्रता, समानता औश्र बन्धुता के नियमों की घोषणा करना था ।[15]

गुरूजी किसी व्यक्ति विशेष या धर्म विशेष के विरुद्ध नहीं थे । वे सिर्फ गलत

---

12. गुरमत मिशनरी कॉलिज, दस गुरु साहिबान, पृ0— 119
13. एस0सी0 बैनर्जी, वही, पृ0— 202
14. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 207
15. हरिराम गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख गुरूज़, पृ0— 148

नीतियों और दुराचरण के विरुद्ध थे । उन्होंने संकल्प किया था कि वे देश से अन्याय व अत्याचार को मिटाकर ही दम लेंगे ।[16]

गुरू गोविन्द सिंह जी के अन्दर यह चिंगारी तो उपस्थित थी और सुलगती थी, परन्तु उसके प्रचण्ड रूप धारण करने के लिए साधन और सामग्री अभी मौजूद नहीं थी। और इतनी बड़ी आवश्यक समस्या और पहाड़ जैसा काम उनके सामने था । किसी भय और आशंका के तूफान से, किसी उदासी,वेहिम्मती, कायरता के झोंखों से किसी स्वार्थ सुख—शान्ति आराम की इच्छा से अथवा भूल या वेपरवाही के कारण यह चिंगारी न बुझी और न ही बुझायी जा सकती थी ।

इस समय गुरू गोविन्द सिंह ने यमुना नदी के किनारे एक सुन्दर पर्वतीय स्थान देखकर उसे सिक्खधर्म के प्रचार का केन्द्र बनाया तथा इसका नाम उन्होंने 'पाऊँटा' रखा । नवम्बर सन् 1685 ई0 में उन्होंने यहाँ एक शानदार गुरूद्वारा भी बनवाया, जिसे आजकल 'पाऊँटा' साहिब कहते हैं ।[17]

यहाँ पर गुरू जी ने 'जपसाहब', 'सव्वईये' और 'अकाल—उस्तत' आदि वाणियाँ रचीं । कवि—दरबार किये जाने लगे । संगतें भारी संख्या में एकत्रित होने लगीं । सिक्खों में घुड़सवारी तथा शिकार के शोक को उत्पन्न करके उनके व्यक्तित्व में हिंसक तत्वों का समावेश किया जाने लगा । इससे समीपवर्ती पहाड़ी राजे ईर्ष्या से जल उठे । वे गुरूजी की शक्ति को कुचलने के लिए कोई बहाना सोचने लगे । शीघ्र ही उन्हें यह बहाना मिल गया । कहलूर के राजे भीमचन्द के पुत्र अजमेरचन्द का विवाह गढ़वाल के राजा फतेहशाह की लड़की से होना था । भीमचन्द ने गुरूजी से परसादी हाथी और तम्बू मांगा । गुरूजी उसकी बुरी नीयत को जान गये और उन्होंने वस्तुएं देने से इन्कार कर दिया । परिणामस्वरूप विवाह के पश्चात् भीमचन्द ने अन्य पहाड़ी राजाओं का अपने साथ मिलाकर सिक्ख गुरू पर आक्रमण कर दिया। भंगानी के निकट 15 अप्रैल 1687 ई0 को दोनों ओर सेनाएं भिड़ गयीं।[18] भीमचन्द की हार हुई और वह भारी क्षति करवाकर युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गया ।

16. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 36
17. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 79
18. वही, पृ0— 87

मुगल बादशाह औरंगजेब क्योंकि इस समय दक्षिण में था, अतः ये पहाड़ी राजे मुगलों को कर चुकाने में लापरवाह हो गये थे । जब मुगल सेनापति अलिफखान कर वसूल करने इस क्षेत्र में आया, तो ये पहाड़ी राजे डर गये । बाध्य होकर उन्होंने गुरू गोविन्द सिंह से सहायता की प्रार्थना की । यद्यपि अभी हाल ही में इन्होंने गुरूजी के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था, फिर भी गुरूजी सहायता देने को तत्पर हो गये । इन पहाड़ी राजाओं ने गुरूजी की सहायता से नादोन के मैदान में मुगल सेनापति अलिफ खान को पराजित कर दिया। तत्पश्चात् पहाड़ी राजाओं ने सोचा कि उन्होंने मुगलों के विरुद्ध युद्ध करके गल्ती की है, अतः उन्होंने मुगलों से अस्थायी सन्धि करके सिक्ख गुरू से विश्वासघात किया तथा युद्ध का सारा उत्तरदायित्व भी गुरूजी पर डाल दिया ।[19] उन्होंने जम्मू व कांगड़ा के सूबेदार दिलावर खान[20] के साथमिलकर भी गुरूजी पर आक्रमण करने की योजना बनाई ।

गुरू गोविन्द सिंह का अस्तित्व भी भंगानी और नादोन के युद्धों के कारण अब मुगलों की आँखों में भी खटकने लगा था । अतः दिलावर खाँ ने अपने पुत्र रूस्तम खाँ को सेना सहित भेजा । इसकी सूचना मिलने पर गुरूजी ने अचानक रात्रि में ही रूस्तम खाँ पर आक्रमण किया और उसे मैदान छोड़कर भागने पर विवश कर दिया ।[21] रूस्तम खाँ की हार के पश्चात् हुसैन खाँ को भेजा गया, जो गुरू गोविन्द सिंह के हाथों मारा गया ।[22] इसके पश्चात् दिलावर खाँ ने जुझार सिंह को भेजा, जो गुरूजी तक पहुँचने से पहले ही जसवाल के शासक के साथ हुए सैनिक संघर्ष में मारा गया ।[23]

अब तक गुरू गोविन्द सिंह को पराजित करने के बार–बार प्रयत्न किये गये, लेकिन सब व्यर्थ सिद्ध हुए थे । लगातार पराजयों के कारण मुगल भी गुरूजी की शक्ति से बहुत चिन्तित हुए और इसकी समस्त सूचनाएँ मुगल बादशाह औरंगज़ेब को दक्षिण में भेजी गयीं ।

---

19. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरु गोविन्द सिंह, पृ0– 103
20. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म, पृ0– 90
21. गुरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक, अध्याय 10
22. वही, (हुसैनी युद्ध कथन), पृ0– 57
23. वही, (अध्याय–12)

औरंगजेब अभी दक्षिण में ही था । वह दक्षिण की रियासतों को पराजित करने के लिए पुरजोर प्रयत्न कर रहा था तथा अपने सभी पुत्रों और श्रेष्ठ सेनानायकों को दक्षिण–अभियान पर अपने साथ ले गया था । परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में शासन व्यवस्था ढीली पड़ गई थी ।

गुरू गोविन्द सिंह को पराजित न कर पाने की सूचना पाकर मुगल बादशाह औरंगजेब अत्यन्त क्रोधित हुआ । स्वयं व्यस्त होने के कारण उसने अपने पुत्र शहजादा–मुअज्जम को 13 जुलाई 1696 ई0 को एक विशाल सेना देकर भेजा ।[24] मुअज्जम के साथ उसका बचपन का शिक्षक नन्दलाल भी था, जिससे वह अत्यन्त प्रभावित था ।[25] यह नन्दलाल स्वयं गुरू गोविन्द सिंह का अनुयायी था, अतः उसने सुझाव दिया कि गुरूजी पहाड़ी राजाओं के मित्र नहीं हैं। उसने यह अनुमान भी लगाया कि ऐसा समय अवश्य आयेगा जब हमें गुरूजी की सहायता की आवश्यकता होगी तथा उनके साथ की गई मित्रता आने वाले समय में हमारे लिए लाभदायक सिद्ध होगी ।[26]

मुअज्जम जो कि अपने पिता के पश्चात् बादशाह बनना चाहता था, इस बात से प्रभावित हुआ । कालान्तर में गद्दी प्राप्त करने में इस मित्रता का उसे लाभ ही हो सकता था। अतः उसने गुरूजी के शत्रु पहाड़ी राजाओं को नष्ट करने की आज्ञा दे दी।[27] वह स्वयं तो लाहौर रुक गया और मिर्जा बेग को पहाड़ी राजाओं को नष्ट करने के लिए भेजा ।

इस प्रकार गुरूजी इस संकट से शहजादे के शिक्षक नन्दलाल की सहायता से बच गये । लेकिन ऐसा भी आभास होता है कि गुरूजी को इस संकट का सन्देह अवश्य था, जोकि उनके 1696 ई0 में लिखे एक पत्र से ज्ञात होता है। यह पत्र रामा और तिलोका को सेना भेजने के लिए लिखा गया था[28] परन्तु जो भी हो, गुरूजी इस संकटमय स्थिति से बच निकलने में सफल हो गये ।

---

24. हरबन्स सिंह, गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 65
25. सुक्खा सिंह, गुरू बिलास, पृ0— 171
26. सोहन सिंह सीतल, वही, पृ0— 183
27. सुन्दर सिंह, द बेटिल्स ऑफ गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 19—21
28. आई0बी0 बेनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग—2, परिशिष्ट—(बी) ।

इस घटना के पश्चात् कुछ समय तक शान्ति बनी रही । इस प्रकार गुरूजी धर्म–प्रचार और संगठनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हुए और उन्होंने अनेकों को उपदेश देकर आत्मशान्ति प्रदान की । गुरूजी का ध्यान अब इस ओर बढ़ा कि सिक्खों को देश और जाति की रक्षा के लिए अपने आपको समर्पित करने हेतु तैयार किया जाये । अब तक केवल मानव की निजी मानसिक उन्नति पर ही बल दिया जाता था । परिणामस्वरूप एकान्तवासी बने धार्मिक लोग देश और जाति के कष्टों से प्रभावित न होकर इनके प्रति उदासीन ही रहते थे । गुरूजी अपने सिक्खों को एक जीवित बिरादरी का पद देना चाहते थे, जो देश और धर्म की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहें । अब वे मनुष्य में सन्त और सिपाही दोनों के ही दर्शन करना चाहते थे ।

अतः सन् 1699 ई0 में उन्होंने सभी सिक्खों के नाम हुक्मनामें भेजकर वैशाखी मनाने के लिए सबको आनन्दपुर में एकत्रित होने का आदेश दिया । भारी संख्या में लोग आनन्दपुर में एकत्रित हुए। इस अवसर पर वैशाखी वाले दिन बड़ा भारी दीवान सजाया गया। सभी लोग उत्सुकता से गुरूजी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि अचानक गुरूजी हाथ में नंगी तलवार लेकर स्टेज पर उपस्थित हुए और गम्भीर शब्दों में बोले कि जालिम के अत्याचार की भड़क रही अग्नि को बुझाने और धर्म रक्षा की वेदी पर बलिदान करने के लिए मुझे एक सिर की आवश्यकता है । है कोई शूरवीर, जिसे अपना सिर इस तलवार की धार पर कुर्बान करना मंजूर हो ।[29] सारी सभा में सन्नाटा छा गया । थोड़ी देर पश्चात् लाहौर निवासी दयाराम खत्री ने खड़े होकर अपना सिर प्रस्तुत किया । गुरूजी आगे बढ़े वे दयाराम का हाथ पकड़कर साथ के तम्बू में ले गये । तम्बू के अन्दर धम् से गिरती हुई तलवार के वार की आवाज सुनाई दी और अन्दर से बहता हुआ खून एक धारा में प्रवाहित होने लगा । इससे बाहर बैठे हुए लोग अत्यन्त भयभीत हो गये । इतने में ही टपकते खून से सनी तलवार हाथ में लिए गुरूजी ने बाहर आकर फिर गरज कर ललकारा– मुझे एक ओर सिर की आवश्यकता है। लोगों के दिल दहल गये । अब धर्मदास नामक अनुयायी ने अपना सिर प्रस्तुत किया । गुरूजी उसको भी पकड़कर तम्बू में ले गये। वहाँ फिर तलवार का झटका सुनाई दिया और पहले से भी अधिक रक्त बह निकला। गुरूजी रक्त रंजित तलवार को बाहर लाते हुए बोले कि

29. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0– 125

मुझे एक ओर सिर की आवश्यकता है । अब बिदर निवासी साहब चन्द नाई ने अपना सिर प्रस्तुत किया । इसी प्रकार गुरूजी ने दो बार और सिर मांगा । इसके उत्तर में द्वारिका निवासी मोहकम चन्द व जगन्नाथ निवासी हिम्मत कहार ने गुरूजी को अपने—अपने सिर भेंट किये।[30] चाहे कुछ भी थे, परन्तु उनकी मिसाल मिलनी मुश्किल है । वे केवल अपने गुरू की आज्ञा पर अपना शरीर और जीवन कौम पर न्योछावर करने के लिए तैयार हुए, जीवन को तुच्छ समझा और प्राणों का बलिदान करने के लिए तत्पर हो गये । वे भारत के सच्चे सपूत थे, देश प्रेम के आदर्श थे, महान आत्मा थे । इस विशेष विधि से कार्य आरम्भ करने में गुरूजी के पास दो भेद थे— एक तो यह देखना कि सिक्खों में कौमी सेवा तथा देशभक्ति की भावना कितनी आ चुकी थी और उनके देर से चले आ रहे उपदेश और प्रचार का क्या फल था । क्या सिक्खों में ऐसी योग्यता आ चुकी थी कि वे हँसते—हँसते दूसरों के लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकें ? गुरू जी के सिक्ख अपनी इस परीक्षा में पूरे उतरे । उन्होंनें पांच सिरों की मांग की और पाँचों ने ही अपने सिर गुरू जी की तलवार के सामने अपर्ण कर दिये । यदि सारे सिक्खों को आज्ञा होती तो वे सारे के सारे सिर देने से इन्कार न करते ?

दूसरा, यह कि गुरूजी सिक्खों को दृढ़ कराना चाहते थेकि देशऔर जाति का भला केवल वे ही पुरूष कर सकते हैं जो अपने रक्त से उनको बल और शक्ति देंगे । इसबात की पुष्टि सिक्खों के उन कारनामों से सहज ही हो जाती है जो खालसा धर्म की स्थापना के उपरान्त उन्होंने गुरू गोविन्छ सिंह के जीवनकाल अथवा पीछे कर दिखाये ।

कुछ समय तक अपूर्व शान्ति रही । गुरूजी तम्बू में गये । उन पाँचों को स्नान कराने के बाद उन्हें नये वस्त्र व शस्त्र धारण कराये तथा उनको साथ लेकर बाहर आ गये। दीवान में उपस्थित लोगों की हेरानी एवं उत्तेजना की कोई सीमा न रही । तत्पश्चात् गुरूजी वीर आसन लगाकर ग्रन्थ—साहब के सामने बैठ गये और ये उपरोक्त पाँचों अनुयायी हाथ जोड़कर उनके पास एक तरफ खड़े रहे । गुरूवाणी पढ़ी जाने लगीं और खंड़े से अमृत तैयार किया जाने लगा ।[31] जब अमृत तैयार हो गया, तो इन पाँचों व्यक्तियों को पिलाया गया और उनके नामों के आगे 'सिंह' लगाया गया और अब उनके नाम दया सिंह, धर्म सिंह, साहब सिंह,

---

30. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 125
31. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 39

मोहकम सिंह और हिम्मत सिंह रख दिये गये । इन्हें पाँच प्यारे कहा गया । इसके बाद गुरूजी ने भी उनसे अमृत मांगकर पिया और वे स्वयं गुरू गोविन्दराय से गुरू गोविन्द सिंह बन गये ।[32] दुनिया के इतिहास में इस तरह का अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता है ।

गुरू जी ने इन पांच प्यारों से कहा कि आज से उनका नया जन्म हुआ है और वे सब गुरू भाई हैं । आप सिंह बन गये हैं और वाहे गुरूजी का खालसा है । आपको आज से सदा पांच चिन्ह धारण करने होंगे— वेश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ ।[33] इन्हें भविष्य में किसी अन्य धर्म के पीरों और देवी—देवताओं को नहीं मानना होगा । केवल सर्वव्यापक निरंकार अकाल पुरूष को ही मानना होगा। इसके बाद दोबारा अमृत तैयार किया गया और पांच प्यारों के हाथों दीवान में उपस्थित प्रत्येक सिक्ख को अमृतपान कराया गया ।[34] इस प्रकार गुरू गोविन्द सिंह ने उनके हाथों तलवार सौंप कर देश और धर्म की सेवा का भार उनके कन्धों पर डाल दिया । इस प्रकार गुरू गोविन्द सिंह ने शान्तिप्रिय सिक्खों से सशस्त्र खालसा पन्थ का निर्माण किया।

****

---

32. प्रियदर्शी प्रकाश, गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 39
33. वही, पृ0— 39
34. लतीफ, हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0— 263
    "लतीफ उपस्थित जन—समुदाय की संख्या लगभग 80,000 बताता है ।"

(2) खालसा पन्थ से पूर्व सिक्ख धर्म की स्थिति :

सिक्खों का मुख्य केन्द्र पंजाब था । सिक्ख धर्म के प्रणेता और सिक्खों के प्रथम गुरू श्रीगुरू नानकदेव के पश्चात् सिक्खधर्म निरन्तर विकास की ओर ही उन्मुख रहा । यह मौलिक रूप से एक धार्मिक आन्दोलन था । गुरू नानक ने सारे देश में भ्रमण करके सिक्खधर्म को दूर–दूर तक फैलाया । इसके बाद सिक्खों के दूसरे गुरू अंगददेव ने भी इसके प्रसार में सराहनीय कार्य किये ।

उन्होंने गुरू नानक के उपदेशों और भजनों का संग्रह किया और लंगर प्रथा को प्रारम्भ किया ।[35] उन्होंने सिक्खधर्म को उदासियों से अलग कर दिया । तत्पश्चात् गुरू अमरदास सिक्खों के तीसरे गुरू नियुक्त हुए । उन्होंने गोइंदवाल में एक ब़ाबवली का निर्माण करवाया और उन्होंने लंगर प्रथा में सुधार कर उसका विस्तार भी किया ।[36] उन्होंने मंजी प्रथा भी चालू की । जन्म और मरण के समय पृथक–पृथक रीतियों का संचालन किया । हिन्दू त्योहारों को सही ढंग से मनाने का आवाह्न किया । उन्होंने सती प्रथा तथा पर्दाप्रथा का विरोध किया।

इसके पश्चात् गुरू रामदास सिक्खों के चतुर्थ गुरू बने । उन्होंने सिक्खधर्म के प्रसार एवं प्रचार में काफी योगदान दिया, अमृतसर की नींव रखी व मसन्द प्रथा को आरम्भ किया ।[37] तदुपरान्त गुरू अर्जुनदेव सिक्खों के पाँचवें गुरू हुए । इनके काल में गुरूगद्‌दी, जोकि अब तक केवल धार्मिक रूप ही रखती थी, अब एक ही परिवार से सम्बन्धित होने के कारण राजनैतिक स्वरूप भी धारण कर गयी। गुरू अब सच्चा पातशाह कहलाने लगा था।[38]

इस प्रकार गुरूगद्‌दी का पैतृक होना कालान्तर में सिक्खों के चरित्र में आमूलचूल परिवर्तन का कारण बना । मुगल बादशाह अकबर का मैत्रीपूर्ण व्यवहार, जो गुरू अमरदास और रामदास के काल से चला आ रहा था, गुरू अर्जुनदेव के साथ भी निरंतर

35. गोकुल चन्द नारंग, सिक्ख मत दा परिवर्तन (पंजाबी), पृ0— 18
36. नरिन्दरपाल सिंह, पंजाब दा इतिहास, पृ0— 20
37. मसन्द, मसन्द–ऐ–आली का बिगड़ा हुआ रूप है ।
38. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म, पृ0— 87

प्रगति पर था ।

गुरू अर्जुनदेव ही पहले गुरू थे, जिन्होंने सिक्खधर्म को एक उचित संगठन का रूप दिया । उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'आदि ग्रन्थ' का सम्पादन करके किया, जिससे सिक्ख संगठन सुदृढ़ हुआ ।[39] उन्होंने अमृतसर सरोवर के मध्य एक हरि–मन्दिर बनवाया । गुरू अर्जुनदेव ने अपने गुरूकाल में सिक्ख धर्म की बहुत उन्नति की ।

[illegible] कोई अलग अस्तित्व ही मिल पाया था । मुगल सरकार तथा अन्य लोग सिक्खों को हिन्दुओं का ही एक वर्ग मानते थे । बाबर ने भी गुरू नानकदेव को एक हिन्दू फकीर ही समझा था । यहाँ तक कि गुरू अर्जुनदेव के काल में भी मुगल सरकार सिक्खों को हिन्दुओं का ही एक भाग समझती थी । यह तथ्य जहाँगीर के इस कथन से सिद्ध होता है, जब वह गुरू अर्जुनदेव के बारे में अपनी आत्मकथा में लिखता है कि ''ब्यास नदी के तट पर स्थित गोइंदवाल में धार्मिक एवं साधुओं के पहिनावे में अर्जुन नाम का एक हिन्दू रहता है ।''[40]

इन दिनों तक सिक्खों की स्थिति ऐसी थी कि वे शस्त्रहीन रहते थे । शस्त्र धारण करना उनके लिए आवश्यक नहीं था । यह एक शान्तिप्रिय एवं धार्मिक संगठन था। परन्तु जहाँगीर की कूटनीतियों के कारण गुरू अर्जुनदेव को अपना बलिदान देना पड़ा । इससे सिक्ख होश में आ गये और उन्होंने सोचा कि यदि धर्म को बचाना है, तो तलवार भी धारण करनी चाहिए । इसलिए सिक्खों के छठे गुरू हरगोविन्द ने सिक्खों को तलवार प्रयोग की अनुमति दे दी ।

इस प्रकार सिक्ख अब अस्त्र–शस्त्रों से लैस होने लगे और उनमें सैनिक प्रवृत्ति का भी समावेश होने लगा । गुरू हरगोविन्द ने मुगलों के विरुद्ध चार लड़ाईयाँ लड़ी तथा चारों में विजय प्राप्त की । इससे उनका मनोबल बढ़ने लगा और वे सोचने लगे कि यदि वे और अच्छी तरह से संगठित हो जोयं तो वे बड़े पैमाने पर युद्ध कर सकते हैं, और बड़े से बड़े संकट का भी सामना कर सकते हैं ।

---

39. आई0बी0 बैनर्जी, खालसे दी उत्पत्ति, भाग–1, पृ0– 159
40. रोजर्स एण्ड बिवरीज, वही, भाग–1, पृ0– 72

गुरू हरगोविन्द के पश्चात् सिक्खों और मुगलों में कोई सशस्त्र टकराव नहीं हुआ । इसका परिणाम यह निकला कि वे फिर शस्त्रहीन होने लगे, यद्यपि 2200 घुड़सवारों की सेना अब भी तैयार थी । गुरू हरगोविन्द राय और हरकृष्ण का समय शान्ति से निकल गया। गुरू तेगबहादुर के समय में भी मुगलों से कोई सशस्त्र टकराव नहीं हुआ । लेकिन मुगल बादशाह औरंगजेब की धर्मान्धता के कारण गुरू तेगबहादुर का वध कर दिया गया।[41]

भारत में सदियों से ही ब्राह्मण को समाज का शीर्षस्थ माना जाता रहा है। इन्होंने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज को चार वर्णों में विभाजित किया हुआ था । धर्म पुस्तकों का पढ़ना, विचारना और देवपूजा केवल ब्राह्मण के ही कार्य थे । अस्त्र–शस्त्र द्वारा देश की रक्षा करना क्षत्रिय का दायित्व था ।[42] सदियों से यह व्यवस्था अपने दृढ़ अस्तित्व में थी, जिसके कारण लोगों को यह विश्वास हो गया था कि पूजा–पाठ ही धर्म का अंग है और शस्त्र चलाना निर्दयता है और यह धर्म से निम्नकोटि का काम है ।[43] सिक्ख गुरूओं ने इस बात का चाहे जितना भी खण्डन किया, फिर भी साधारण मनुष्य यही सोचता थाकि ईश्वर की आराधना करना और तलवार चलाना, इन दोनों का आपस में कोई मेलनहींहै ।[44] ब्राह्मणों की इस नीति से लोगों में अहिंसा की भावना पैदा हो गई थी, जिसके कारण लोगों में से वीर रस लुप्त हो गया था । यही कारण है कि मुसलमान शासक बड़ी सरलता से भारत पर कब्जा कर सके । उनकी गुलामी में जकड़े हुए लोग और भी ज्यादा अहिंसक तथा डरपोक हो गये ।[45]

लेकिन सिक्खों की स्थिति इन लोगों से भिन्न थी । इस समय सिक्खों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हो गई थी और उनके पास अपना धर्मग्रन्थ, धार्मिक नेता, धर्म–मन्दिर और अपना कोष था । अब वह फकीरों की टोली नहीं, बल्कि व्यावहारिक व्यक्तियों का एक धार्मिक समूह था । इनमें जमींदार, व्यापारी, दुकानदार, सिपाही और धर्म प्रचारक आदि सभी

41. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0– 58
42. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–23
43. वही, पृ0– 23
44. वही, पृ0– 23
45. वही, पृ0– 23

प्रकार के लोग थे ।[46] इस प्रकार उनका अपना अलग समाज था । उन्होंने मुगल साम्राज्य के अन्दर अपना एक अलग राज्य कायम कर लिया था और उनके गुरू उनके सच्चे पातशाह थे। गुरू हरगोविन्द के समय तलवार का मजा भी चख चुके थे और उनमें राजसी प्रवृत्ति का समावेश निरन्तर हो रहा था । सिक्खों के पास इस समय 2200 घुड़सवारों की अपनी सेना थी, जो किसी भी स्थिति का सामना करने को हमेशा तैयार थी ।

खालसा पंथ से पूर्व सिक्खों की मानसिक उन्नति पर बल दिया जाता था। उनकी कोई निश्चित वेशभूषा नहीं थी । इसके अतिरिक्त खालसा पंथ से पूर्व उनकी स्थिति हमेशा शोकजनक ही रहती थी, क्योंकि वे मुगल बादशाह की आँखों में खटकते रहते थे । खालसा पंथ के स्थापित हो जाने के बाद सिक्खों को पूर्णरूप से एक अलग सामाजिक एवं धार्मिक अस्तित्व मिल चुका था ।

******

---

46. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज कियें बनिया, पृ0— 14

(3) खालसा पंथ का अभिप्राय एवं आवश्यकता :

खालसा पंथ की स्थापना भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है, जो आज से लगभग 283 वर्ष पहले पंजाब में आनन्दपुर नामक नगर में घटित हुई । जब खालसा पंथ की स्थापना हो गई, तो गुरू गोविन्द सिंह ने इसके सम्बन्ध में कहा था कि खालसा परम परमात्मा की अपनी सेना है, जो परमात्मा की अपनी इच्छा से उत्पन्न हुई ।[47]

खालसा शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के 'खालिस' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– पवित्र या शुद्ध । इसके अतिरिक्त उन दिनों जो भूमि सीधे मुगल बादशाह के अधीन होती थी, उसे भी खालसा कहा जाता था । इस प्रकार जब गुरू गोविन्द सिंह को मसन्दों के आचरणहीन तथा लालची होने का पता चला, तो उन्होंने मसन्द प्रथा को खत्म करके सभी संगतों को सीधा अपने सम्पर्क में कर लिया तथा उन्हें खालसा कहा जाने लगा ।

खालसा पंथ में शामिल होने के लिए प्रत्येक मनुष्य को विधिवत् अमृत धारण करना पड़ता था, जिसे एक विशेष विधि द्वारा पाँच प्यारे तैयार करते थे । इस अमृत का कुछ भाग उम्मीदवार के बालों पर छिड़का जाता है, कुछ उसके शरीर पर और कुछ भाग उसे पीने के लिए दिया जाता है ।[48]

तत्पश्चात् अमृत धारण करने वाले से पांच ककारों[49] को धारण करने के लिए कहा जाता हे । ये वेश, कंधा, कड़ा, कृपाण और कच्छ हैं । उसे मादक द्रव्यों का प्रयोग वर्जित कर दिया जाता है ।[50] जब भी एक–दूसरे से मिलें तो 'वाहे गुरूजी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतह' उनका अभिवादन वाक्य होगा । अमृतसर के सरोवर में कभी–कभी स्नान करेंगे, जो सिक्खों का तीर्थ स्थान होगा। खालसे में ईश्वरीय शक्ति निवास मानकर उस पर विश्वास करेंगे । इस प्रकार खालसा पंथ का अपना अलग अस्तित्व हो गया और कुछ ही समय में यह

---

47. श्री गुरूगोविन्द सिंह, सरब लौह ग्रन्थ
"खालसा अकाल पुरख की फौज ।
प्रगटि को खालसा, परमात्म की मौज ।।"
48. ~~गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, फुटनोट,~~ पृ0– 86
49. क्योंकि ये पाँचों चिन्ह शब्द 'क' से शुरू होते हैं, अतः इन्हें पांच ककार कहा जाता है ।
50. गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 86

एक शक्तिशाली पंथ बन गया ।[51]

भारत में राष्ट्रीय चेतना के मार्ग में जाति प्रथा सबसे बड़ी बाधा थी । इसे गुरू गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ का निर्माण कर दूर करने का प्रयास किया ।[52] उन्होंने कहा कि हिन्दुओं की चारों जातियाँ पान, सुपारी, चूने और कत्थे की तरह हैं और इनमें से कोई भी अकेला होठों को सुर्खी, दाँतों को मजबूती या जीभ को स्वाद नहीं दे सकता ।[53] इसलिए उन्होंनें इन चारों जातियों को मिलाकर खालसा पंथ की रचना कर दी ।

जब 11 नवम्बर 1675 ई0 को दिल्ली के चांदनी चौक में गुरू तेगबहादुर का बलिदान दे दिया गया, तो उनका शव बिना किसी मर्यादा के पड़ा रहने दिया गया । इस पर मुगल हुकूमत ने यह भी ऐलान कर दिया कि है कोई ऐसा सिक्ख, जो अपने गुरू का शव संभालने आगे आये ? कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया । उसी समय जब आँधी आयी, तो भाई चेता सिर उठाकर ले गया और लखीशाह बंजारा गुरू का धड़ उठाकर ले गया ।

जब गुरू गोविन्द सिंहको इस बात का पता चला कि मुगल हुकूमत के ऐलान करने पर कोई भी सिक्ख आगे नहीं आया, तो उन्होंने घोषणा की कि मैं ऐसे सिक्ख बनाऊँगा कि अगर उनमें से एक सिक्ख भी हजारों भीड़ में खड़ा हो तो पहचाना जा सके और वह गुरू का सिक्ख होने से इन्कार भी न कर सके । इसी राजनैतिक भीरूता के कारण खालसा पंथ की स्थापना की आवश्यकता पड़ी थी ।

इसके अतिरिक्त जब सिक्ख लोग गुरूजी के दर्शन करने आया करते थे, तो रास्ते में उन्हें गुज्जर तथा रंगड़ लूट लिया करते थे ।[54] इस आपत्ति से बचने के लिए भी शस्त्रधारी होना आवश्यक था, जिसके लिए खालसा पंथ की आवश्यकता पड़ी थी ।

****

---

51. गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 86
52. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 223
53. गुरू गोविन्द सिंह, जफरनामा
54. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–24

(4) खालसा पंथ का समाज पर प्रभाव :

खालसा पंथ ने भारतीय समाज पर अपना असाधारण प्रभाव डाला । बहुत से लोग अमृत धारण करके खालसा पंथ में शामिल हो गये । इससे जात–पांत का खण्डन हुआ और लोगों में एकता आई । यह धर्मतंत्र लोकराज की स्थापना का पहला कदम था, जो गुरू गोविन्द सिंह ने एकता के लिए उठाया, और एकता राष्ट्रवाद का पहला तत्व है ।[55]

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार जन्म से लेकर मरण तक एक हिन्दू का सारा जीवन ब्राह्मण के नेतृत्व के लिए उसका मोहताज है । कर्मकाण्डों का एक भारी जाल हिन्दू की जिन्दगी के चारों ओर बुना हुआ है और कोई हिन्दू इसकी अवहेलना नहीं कर सकता ।[56]

लेकिन खालसा पंथ के अन्तर्गत ये सभी कर्मकाण्ड समाप्त कर दिये गये । इससे ब्राह्मणों में बड़ा रोष पैदा हुआ और वे खालसा पंथ का विरोध करने पर तुल गये । ब्राह्मणों, काजियों और कट्टर मुसलमानों पर खालसा पंथ का बुरा प्रभाव पड़ा, वे इसके अस्तित्व में आने से तिल–मिला उठे और इसे नष्ट करने की सोचने लगे । समय–समय पर इन लोगों ने खालसा पंथ को नष्ट करने के प्रयत्न जारी रखे, लेकिन खालसा पंथ निरन्तर उन्नति ही करता गया ।

ब्राह्मणों की नीति के अनुसार हिन्दू समाज चार भागों में बँटा हुआ था और केवल एक भाग क्षत्रिय ही अस्त्र–शास्त्र रख सकता था। इससे तीन–चौथाई जनता शस्त्रहीन हो गई थी।[57]

लेकिन खालसा पंथ के अन्तर्गत सभी लोगों को, जो इस पंथ में शामिल थे, तलवार धारण करना जरूरी करार दिया गया । इस प्रकार खालसा पंथ के सभी लोग शस्त्रधारी थे। इससे वे अपने वंश एवं धर्म की रक्षा करने में सफल रहे ।

---

55. गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन, पृ0– 84–85
56. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–137
57. वही, पृ0– 135

जाति प्रथा, छुआछूत तथा ब्राह्मणों के एकाधिकार के विरुद्ध गुरू नानक देव के समय से ही आवाज उठाई जा रही थी । इसके लिए ही लंगर प्रथा कायम की गई थी, जहाँ सभी लोग बिना ऊँच–नीच के भोजन करते थे ।[58] परन्तु गुरू गोविन्द सिंह ने इससे एक कदम और आगे बढ़ाया । उन्होंने एक ही बर्तन में से सभी को अमृत पिलाकर जातिप्रथा पर कुठाराघात किया।[59] खालसा पंथ के सरल नियमों के कारण बहुत से लोग इसमें धड़ाधड़ शामिल होने लगे तथा खालसा पंथ की शक्ति में दिनोंदिन वृद्धि होने लगी । लोग ब्राह्मणों के भ्रम–जालों से छूट गये । खालसा पंथ का एक और प्रभाव यह पड़ा कि अब ब्राह्मणों ने देखा कि लोग खालसा पंथ में शामिल हो रहे हैं, तो उन्होंने लोगों पर से अपना शिकंजा ढीला करना शुरू कर दिया जिससे कि लोगों को राहत मिली ।

******

---

58. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–138
59. वही, पृ0– 138

(5) खालसा पंथ का मुगल राजनीति पर प्रभाव :

30 मार्च[60] सन् 1699 ई0 में गुरू गोविन्द सिंह खालसा पंथ का निर्माण करने में सफल रहे ।[61] खालसा पंथ की रचना से गुरू गोविन्द सिंह की शक्ति बहुत बढ़ गई थी । इसके साथ ही साथ पहाड़ी राजाओं ने परामर्श किया कि गुरूजी के विरुद्ध औरंगजेब को भड़काया और उत्तेजित किया जाये और गुरूजी पर सम्मिलित सैनिक शक्ति से आक्रमण किया जाये । यह पक्का परामर्श और निर्णय करके एक दूत औरंगजेब के पास भेजा । उसने औरंगजेब को भड़काया और कहा जिस सिक्खों के गुरू तेगबहादुर को उसने कत्ल करवाया था उसके पुत्र गुरू गोविन्द सिंह ने अपने सिक्ख इकट्ठे करके बड़ी शक्तिशाली सेना बना ली है और उनका एक नया धर्म बनाकर वह सिक्खों को मुसलमानों से लड़ाने की पूरी तैयारी कर रहा है । वह स्वयं बादशाह बन बैठा है । वह शाही लिबास पहनता है । सब डाकू और लुटेरे उसके खालसा धर्म में शामिल होकर उसके मुरीद बन गये हैं । दिन—प्रतिदिन उसकी ताकत बढ़ रही है । यदि इस फूट रहे स्रोत को अभी बन्द न किया गया तो फिर यह बाढ़ बन जायेगा और उसको रोकना कठिन हो जायेगा । देर लग जाने से उस पर काबू पाना कठिन हो जायेगा । औरंगजेब यह सब कुछ सुनकर भड़क उठा और उसका साम्प्रदायिक और जनूनी खून खोलने लगा । उसने सब पहाड़ी राजाओं का गुरू विरुद्ध होना अहो भाग्य समझा और गुरू गोविन्द सिंह के अस्तित्व को मिटाने का दृढ़ इरादा बना लिया। औरंगजेब गुरूजी की इस बढ़ रही शक्ति को किसी भी कीमत पर रोकना चाहता था । इधर गुरूजी निरन्तर सुरक्षात्मक कार्यवाहियों में लगे हुए थे।

मुगल बादशाह गुरूजी की इस शक्ति को रोकने के लिए बहाना खोज रहा था। शीघ्र ही उसे यह अवसर मिल गया, जब पहाडी राजाओं ने औरंगजेब से गुरूजी के विरुद्ध सहायता मांगी । इसमें पैंदाखान[62] तथा दीनाबेग ने मिलकर गुरूजी की शक्ति को नष्ट करने का प्रयास किया, जो असफल रहा ।

इनके असफल प्रयासों से सिक्खों का उत्साह बढ़ता जा रहा था । इधर औरंगजेब के पास गुरूजी के विरुद्ध पहाड़ी राजाओं की शिकायतें भी बढ़ती जा रहीं थीं । औरंगजेब ने

60. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0— 17
61. सतीश चन्द्र,उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पृ0— 11
62. यह पैंदाखान उस पैंदा खां से भिन्न था, जो गुरू हरगोविन्द के समय में था ।

गुरूगोविन्द सिंह के विरुद्ध सरहिन्द के सूबेदार वजीर खाँ के नेतृत्व मं एक बहुत बड़ी सेना भेज दी ।

खालसा पंथ का मुगल राजनीति पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सिक्खों और मुगलों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ते चले गये और उनमें और अधिक संघर्ष आता गया । इस संघर्ष का अन्त कहीं नजर नहीं आ रहा था । औरंगजेब के अत्याचार तथा पिता के दुर्भाग्य की स्मृति गुरू गोविन्द सिंह के लक्ष्य का निर्धारण कर रही थी ।[63] अतः अब सिक्खों और मुगलों में लगातार युद्धों का एक तांता सा लग गया ।

अतः शाही सेना के आगमन की सूचना पाकर गुरू गोविन्द सिंह कीरतपुर से एक मील दूर एक छोटे से ग्राम निरमोह चले गये । यहाँ पर उन्होंने अपने को एक तरफ पहाड़ी राजाओं की सेना से तथा दूसरी तरफ शाही सेना से घिरा हुआ पाया । उन्होंने धैर्य से काम लिया और शत्रु को हरा दिया ।[64] अगले दिन पुनः शत्रु सेना द्वारा आक्रमण किया गया। इसलिए गुरूजी ने यह स्थान छोड़ने का निश्चय कर लिया और बैशाली की ओर प्रस्थान किया, क्योंकि वहाँ का राजा गुरूजी को पहले से ही निमंत्रण दे चुका था ।[65] अब सतलुज नदी के तट पर युद्ध हुआ जिसमें सिक्ख सेना विजयी हुई, लेकिन भंगानी के युद्ध का शूरवीर नेता साहब सिंह मारा गया । उसका शव प्राप्त करने के लिए फिर लड़ाई लड़ी गयी और सिक्ख फिर विजयी हुए ।[66]

कुछ देर बसाली ठहरने के बाद गुरूजी आनन्दपुर आ गये । अब पहाड़ी राजाओं ने यह सोचा कि गुरूजी की बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट नहीं किया जा सकता, अतः उन्होंनें गुरूजी से मित्रता कर ली । गुरू जी उनकी अविश्वसनीयता से भली–भाँति परिचित थे । संधि हो जाने के पश्चात भी पहाड़ी राजे गुरूजी की शक्ति को भयंकर समझते थे और मुगल बादशाह की सहायता पर निर्भर रहते थे ।[67]

---

63. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0– 61
64. मैकालिफ, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–5, पृ0– 138–40.
65. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री ऑव द पंजाब, भाग–1, पृ0–296
66. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0– 256
67. ज्ञानी ज्ञान सिंह, तवारीख गुरू खालसा, भाग–1, पृ0– 152

कहलूर का राजा भीमचन्द अब मुगल बादशाह औरंगजेब के पास गुरूजी के विरुद्ध शिकायत करने स्वयं चला गया ।[68] औरंगजेब ने, जोकि स्वयं खालसा पंथ की शक्ति को नष्ट करने पर तुला हुआ था, क्रोधित होकर सरहिन्द के सूबेदार वजीर खाँ तथा लाहौर के सूबेदार जबरदस्त खाँ के अधीन एक बहुत बड़ी सेना गुरू गोविन्द सिंह के विरुद्ध भेज दी । लगभग 22 पहाड़ी राजे[69] तथा सिक्खों से शत्रुता रखने वाले गुज्जर एवं रंगड़ भी इस सेना में मिल गये । इस विशाल सेना ने आनन्दपुर को घेर लिया । सिक्खों ने बड़ी वीरता दिखाई, लेकिन शत्रु सेना ने बाहर से रसद बन्द कर दी ।

इससे सिक्ख धैर्य छोड़ बैठे।[70] सिक्खों ने पराजय स्वीकार कर किला समर्पित कर देने के लिए गुरूजी से प्रार्थना की । लेकिन गुरू जी ने इन्कार कर दिया । इस पर भी सिक्ख किला छोड़ देने के पक्ष में थे । इस पर गुरू गोविन्द सिंह ने कहा कि जो जाना चाहता है चला जाये, लेकिन लिखकर दे जाये कि न तू हमारा गुरू है और न हम तेरे सिक्ख हैं।[71] लगभग 40 सिक्ख यह बात लिखकर गुरूजी को दे गये और अपने—अपने घर चले गये ।[72] कितने ही दृढ़ विश्वासी डटे रहे । गुरू गोविन्द सिंह जी ने एक बहुत ही शानदार कारनामा कर दिखाया । प्राण देना तो स्वीकार, परन्तु सिक्खी से इन्कार करना कठिन सिद्ध कर दिया और सिक्खों में खालसा धर्म तथा सिक्खी की भावना को प्राणों से भी प्रिय और मूल्यवान दिखा दिया ।

इधर शत्रु सेना भी लड़—लड़कर थक गई । अब औरंगजेब ने गुरू गोविन्द सिंह को एक पत्र लिखा कि मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूँ कि आप आनन्दपुर छोड़ दो और आपको कोई हानि नहीं पहुँचाई जायेगी । यह आपकी इच्छा पर निर्भर करता है कि आप मेरे पास आ जाओ या और कहीं चले जाओ ।[73] इस पर गुरूजी ने जबाब दिया कि मुझे तुम्हारी शपथ पर विश्वास नहीं है। तुम सब झूठे हो और तुम्हारे सैनिक, जिनका

68. मैकालिफ, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—5, पृ0— 145.
69. मौहम्मद अकबर, द पंजाब अंडर द मुगल्स, पृ0— 218
70. सेनापति, गुरू शोभा, पृ0— 59
71. इस लिखत को सिक्ख इतिहास में बेदावा कहते हैं ।
72. मैकालिफ, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—5, पृ0— 180.
73. करतार सिंह, लाइफ ऑफ गुरू गोविन्द सिंह, पृ0— 209

कि काम लड़ना है, डाकू बन चुके हैं ।[74]

अब मुगल सेनापतियों ने कुरान की शपथ खाकर कहा कि अगर गुरू गोविन्द सिंह किला खाली कर दें, तो उनकी जान—माल की रक्षा का उत्तरदायित्व वे अपने ऊपर लेते हैं ।[75]

गुरू गोविन्द सिंह को उन पर विश्वास नहीं था, लेकिन माता गुजरी और बाकी सिक्खों के जोर देने पर गुरूजी ने 18—19 दिसम्बर सन् 1704 ई0 को आनन्दपुर खाली कर दिया ।[76] गुरूजी अभी सरसा नदी के तट परही पहुँचे थे कि मुगलों ने सभी प्रतिज्ञायें भूलकर आक्रमण कर दिया । गुरूजी बड़ी विषम परिस्थिति में फँस गये । गुरूजी की माता गुजरी तथा उनके दो छोटे पुत्र जोरावर सिंह व फतेह सिंह गुरूजी से अलग हो गये । गुरूजी की पत्नियाँ साहिबकौर और सुन्दरी भी अलग हों गयीं और अन्त में दिल्ली पहुँच गयीं । गुरूजी अपने दो बड़े पुत्रों अजीत सिंह व जूझार सिंह तथा 40 सिक्खों सहित धमकौर पहुँच गये ।

माता गुजरी और दोनों छोटे बच्चे गंगू नामक ब्राह्मण की गद्दारी के कारण सरहिंद के सूबेदार वजीर खाँ के पास लाये गये । वजीर खाँ ने इन बच्चों से इस्लाम स्वीकार करने को कहा, लेकिन बच्चों ने दृढ़तापूर्वक इन्कार कर दिया । यह सिलसिला कई दिन तक चलता रहा और अन्त में 24 दिसम्बर सन् 1704 को सुच्चानंद के कहने पर उन्हें जिंदा दीवार में चिनवा कर मार डाला गया ।[77] मलेरकोटला के नबाब शेरखाँ ने बच्चों को छुड़ाने का प्रयत्न किया था, लेकिन वह सफल न हो सका ।[78] माता गुजरी बच्चों की मृत्यु का समाचार सुनकर बेहोश हो गयीं और प्राण त्याग दिये । इस अकेली घटना ने पंजाब के इतिहास को एक शताब्दी तक प्रभावित किया ।[79]

---

74. मैकालिफ, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—5, पृ0— 179.
75. खजान सिंह, हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—1, पृ0— 184
76. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0—
77. मैकालिफ के अनुसार— "सिक्खों का कथन है कि बच्चे दीवार में चुनवा दिये गये थे। लेकिन सूरज प्रकाश और गुरू विलास के अनुसार उन्हें जल्लाद ने जिबहा करके मार डाला था ।
78. प्रीतम सिंह गिल, वही, पृ0— 237
79. वही, पृ0— 238.

चमकोर पहुँचकर गुरूजी एक कच्ची गढ़ी में ठहरे।[80] कुछ ही समय में मुगल सेना ने चमकोर को घेर लिया । गुरूजी के साथ उनके दो बड़े पुत्र और 38 सिक्ख थे ।[81] यह इतिहास का एक विचित्र युद्ध था । एक तरफ चालीस भूखे तथा थके–मांदे सैनिक थे तथा दूसरी तरफ हजारों की गिनती में शाही सेना थी । गुरूजी के पास केवल चालीस जानें ही बाकी थीं, फिर भी उन चालीस के साथ उन्होंने अपने कथन के अनुसार **"चिड़ियों से मैं बाज तुडाऊँ, सवा लाख से एक लडाऊँ"** सारा दिन शाही फौज से डटकर टक्कर ली । घमासान लड़ाई हुई । गुरूजी के दोनों बड़े पुत्र इस लड़ाई में शहीद हो गये । सभी सिक्ख भी शहीद होगये । केवल दो सिक्ख तथा गुरूजी ही बचे थे । रात को गुरू जी उस गढ़ी से निकल गये ।

इसके बाद गुरूजी माछीवाड़ा[82] के भयानक जंगलों में चले गये । उधर वजीरखाँ ने गुरूजी को पकड़ने के लिए कई गश्ती दल छोड़ दिये । माछीवाड़ा में दो पठान भाई गनी खाँ तथा नबी खाँ रहते थे, जो गुरूजी के अनुयायी थे । इनकी सहायता से गुरू गोविन्द सिंह उच्च के पीर[83] के रूप में गश्ती दलों के घेरे से निकलने में सफल हो गये । गुरूजी कनेच और हिरात होते हुए जैतपुर पहुँचे । यहाँ पर उन्हें सरहिन्द में छोटे पुत्रों की मृत्यु का समाचार रायकलां ने दिया । यहाँ से गुरूजी दीना चले गये ।

दीना गांव से गुरू गोविन्द सिंह ने मुगल बादशाह औरंगजेब को एक पत्र लिखा, जिसे जफरनामा कहा जाता है ।[84] यह पत्र धर्म सिंह तथा दया सिंह को औरंगजेब तक पहुँचाने के लिए दिया गया । इस पत्र में गुरूजी ने औरंगजेब तथा सरहिन्द के सूबेदार वजीरखाँ के कुकृत्यों पर प्रकाश डाला और उनके विरुद्ध तलवार उठाने को ठीक सिद्ध किया ।[85] इससे यह पता चलता है कि औरंगजेब ने कसमें खाकर गुरूजी को अपने दरबार में

80. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग–2, पृ0– 135
81. गुरू गोविन्द सिंह, जफरनामा
82. माछीवाड़ा लुधियाने से 22 मील पूर्व की ओर है ।
83. उच्च के पीरों का मुसलमान बहुत आदर करते हैं ।
84. जी0एस0 छावड़ा, द एडवान्स्ड स्टडी इन द हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, भाग–1, पृ0– 303.
85. गुरू गोविन्द सिंह, जफरनामा – "सूँ कारअज हमा हीलते दर गुजशत ।
हलाल अस्त बुरदन वा शमशीर दत्त ।।"

बुलावा भेजा और उनके सम्मान का वचन दिया और इकरार किया । उसके उत्तर में गुरूजी ने बड़े जोशीले और अनोखे ढंग से पत्र लिखा और औरंगजेब के चरित्र को भली प्रकार नंगा कियाऔर उसके मजहवीं फरेब की नकाब उतारी । बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा कि तेरे कौल इकरार पर हमें कोई भरोसा नहीं । तू तो बेईमान और बे–दीन है और ऐसे बे–दीन के वायदे पर विश्वास करना उचित नहीं है । भाई दया सिंह तथा धर्मसिंह ने यह पत्र औरंगजेब को 20 जनवरी 1706 ई0 को दक्षिण में अहमदनगर में दिया ।[86]

दीना गांव से होते हुए गुरूजी खिदराना पहुँचे । मुगल सेना उनका पीछा कर रही थी । खिदराने की ढाब पर गुरूजी ने कब्जा कर लिया । चाहे मुगल सेना काफी शक्तिशाली थी, परन्तु बिना पानी के वह अधिक देर तक टिक न सकी और वापस लौट गई। इस युद्ध में वह 40 सिक्ख भी आ पहुँचे थे, जिन्होंने आनन्दपुर में लिखित रूप से गुरूजी का साथ छोड़ दिया था । ये सभी सिक्ख यहाँ पर शहीद हो गये थे । इसलिए इनकी याद में खिदराना की टाव का नाम मुक्तसर रख दिया गया ।

खिदराना से गुरूजी भटिण्डा चले गये और वहाँ से तलवण्डी साबो पहुँच गये। यहाँ गुरूजी ने सैनिक अभियानों से दम लिया था, इसलिए इसे दमदमा साहिब कहते हैं। यहाँ पर भाई मनी सिंह के साथ गुरूजी की पत्नियाँ सुन्दरी और साहिबकौर भी गुरूजी के पास पहुँच गयीं ।[87]

तलवार उठाने की नीति को ठीक सिद्ध करने के लिए गुरूजी स्वयं मुगल बादशाह औरंगजेब से मिलना चाहते थे ।[88] वे बादशाह को अपने युद्धों की सारी कहानी की सही तस्वीर बताना चाहते थे, जो कि सम्भवतः मुगल सूबेदारों तथा सेनापतियों ने बादशाह को नहीं बताई होगी । वे यह भी बता देना चाहते थे कि किस प्रकार झूठी कसमें खाकर उन्हें धोखा दिया गया है ।[89] किस प्रकार वजीर खाँ ने उनके दो नाबालिग पुत्रों की निमर्म हत्या कर दी है, जिनकी कुरान भी मनाही करता है । इसके अतिरिक्त स्वयं बादशाह औरंगजेब ने

86. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 238
87. वही, पृ0– 239
88. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग–3, पृ0– 144
89. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0– 240–41

भी गुरूजी को पत्र लिखकरबुला भेजा था ।[90] इन सब बातों को ध्यान में रखकर गुरू गोविन्द सिंह ने दक्षिण को प्रस्थान कर दिया। वे राजस्थान क बीच में से होकर दक्षिण की ओर जाने लगे । अभी वे भागोड़ ही पहुँचे थे कि उन्हें समाचार मिला कि मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु हो गई है । औरंगजेब 20 फरवरी सन् 1707 ई0को मर गया।[91]

मुगल बादशाह औरंगजेब खालसा पंथ की शक्ति को नष्ट करने में असफल रहा, और खालसा पंथ का मुगल राजनीति पर यह प्रभाव पड़ा कि मुगलों को सिक्खों के साथ निरन्तर युद्धों में उलझना पड़ा । एक तरफ मुगल दक्षिण में उलझे हुए थे और इधर उत्तर भारत में पंजाब में खालसा फौज ने मुगलों से पंजाब को स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठा लिया था। मुगल बादशाहों की अपनी ही नीति के कारण सिक्खों को खालसा पंथ के रूप में तलवार हाथ में लेनी पड़ी । जब एक बार तलवार इन्होंने हाथ में ले ली, तो इसकी अचूक मार से तैमूरी साम्राज्य घायल हो तड़फड़ा उठा । राजपूतों, मराठों और सिक्खों के विद्रोह ने इस साम्राज्य की कब्र ही खोद डाली ।

****

90. कनिंघम, वही, पृ0— 79
91. जे0एन0 सरकार, औरंगजेब, पृ0— 487—88

(6) श्री गुरू गोविन्द सिंह का बलिदान एवं इतिहास में महत्त्व :

श्री गुरू गोविन्द सिंह का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है । जिस सिक्खधर्म का प्रारम्भ गुरू नानक ने किया था, उसको गुरू गोविन्द सिंह ने पूर्णता प्रदान की । गुरू गोविन्द सिंह ने न कवल सिक्खों को एक व्यवस्थित स्वरूप ही दिया, बल्कि उन्होंने समय की आवश्यकता को देखते हुए उन्हें सन्त–सिपाही बनाने में भी सफलता प्राप्त की । सिक्खधर्म अपने आप में अनूठा है, क्योंकि मानवीय मुक्ति के लिए यह गृहस्थ जीवन को प्रमुखता देता है । गुरू गोविन्द सिंह ने सिक्खों को खालसा रूप प्रदान कर, उन्हें प्रामाणिक रूप से खालिस होने की घोषणा की । इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने आदिग्रन्थ में पंचम गुरू के बाद के शेष चार गुरूओं की शिक्षाओं को भी सम्मिलित किया, अपने बाद गुरूपद की परम्परा को समाप्त किया । आदि ग्रन्थ की शिक्षाओं को ही सिक्खों का मार्ग प्रदर्शित करने वाला बताया और आदि ग्रन्थ को ही गुरू की मान्यता दी ।

मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध छिड़ गया ।[92] बहादुरशाह की गुरू गोविन्द सिंह से पहले से ही मित्रता थी । उसने गुरूजी से सहायता मांगी । गुरूजी ने 300 सिक्ख घुड़सवार दया सिंह व धर्मसिंह के नेतृत्व में भेज दिये । जाजों[93] के युद्ध में बहादुरशाह विजयी हुआ और मौहम्मद आजम मारा गया । बहादुरशाह भाग्यशाली विजेता के रूप में आगरा लौट आया और अपनी विजय की सूचना धर्म सिंह के द्वारा गुरूजी को भेजी[94] तथा उन्हें दरबार में आने को कहा ।

मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वारा बुलाये जाने पर गुरूजी मथुरा–वृन्दावन होते हुए आगरा पहुँचे । गुरूजी ने अपना अलग कैम्प लगाया और दो–तीन दिन में एक बार बादशाह से मिलने जाते ।[95] बहादुरशाह ने गुरूजी को बहुत–बहुत धन्यवाद दिया और सम्मान स्वरूप उन्हें एक मूल्यवान पोशाक तथा हीरोंजड़ित एक रूमाल (धुखधुखी) दिया, जिसका

---

92. मैकालिफ, हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–5, पृ0– 229
    औरंगजेब के तीन पुत्र थे– बहादुरशाह, कामबख्श और मौहम्मद आजम ।
93. हरबन्स सिंह, गुरू गोविन्द सिंह , चण्डीगढ़ 1966, पृ0– 156 के अनुसार यह युद्ध 8 जून 1707 में हुआ था ।
94. मैकालिफ,हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–5, पृ0– 230
95. सेनापत, श्री गुरू शोभा, अध्याय 16

मूल्य लगभग 60, रूपये था ।[96] गुरू गोविन्द सिंह तथा बहादुरशाह के मैत्रीभाव में वृद्धि हुई और सिक्ख—मुगल—सम्बन्ध फिर मैत्रीपूर्ण रूप धारण कर गये । अब गुरूजी ने सोचा कि वे शीघ्र ही पंजाब वापस चले जायेंगे । ऐसे ही विचार उन्होंने धौलपुर की संगत को लिखे हुकम्नामें में प्रगट किये थे ।[97]

ठीक इसी वक्त बहादुरशाह को कछवाहा राजपूतों के विद्रोह को दबाने के लिए राजस्थान जाना पड़ा । बादशाह ने गुरूजी से भी साथ चलने की प्रार्थना की, इसलिए गुरूजी पंजाब जाने की बजाये बादशाह के साथ राजस्थान चले गये । वहाँ पर बादशाह को दक्षिण में कामबख्श के विद्रोह के समाचार मिले । अतः बहादुरशाह दक्षिण की ओर चल पड़ा। गुरूजी भी बादशाह के साथ ही दक्षिण की ओर चल पड़े ।[98]

आगरा में गुरू गोविन्द सिंह तथा बहादुरशाह में वार्तालाप हुआ था । यद्यपि पूर्ण विवरण ज्ञात नहीं है, फिर भी इतना स्पष्ट है कि बातचीत का विषय सिक्खों पर तथा हिन्दू जाति पर हो रहे अत्याचार ही था और गुरूजी उन कर्मचारियों, विशेषकर वजीर खाँ को दण्ड दिलवाना चाहते थे, जिन्होंने विशेष रूप से निर्दोष व्यक्तियों पर अत्याचार किये थे ।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे बहादुरशाह के साथ चलते रहे । बादशाह ने कहा कि वह अपना शासन स्थिर करने के पश्चात् ही ऐसा कर सकता है ।[99] गुरूजी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लगातार प्रयत्न करते रहे, लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनके प्रयत्न असफल हो रहे हैं और बादशाह उनसे कन्नी काटना चाहता है, तो उन्होंने बहादुरशाह का साथ छोड़ दिया ।

गुरू गोविन्द सिंह ने हिंगोली में बहादुरशाह का साथ छोड़ दिया था। बादशाह सेना लेकर हैदराबाद की तरफ चला गया और गुरूजी धीरे—धीरे बसमथ नगर के रास्ते नन्देड़ पहुँच गये । उन्होंने 17 जुलाई, 1708 ई0 को गोदावरी के तट पर अपना डेरा लगा दिया ।[100]

---

96 सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0— 58
97. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग—2, पृ0— 195
98. सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ0— 58
99. मैकालिफ,हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—5, पृ0— 235
100. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0—238

जम्मू—काश्मीर के इलाके पुन्छ में राजौड़ी एक छोटा सा गांव है । यहाँ रामदेव नाम का एक राजपूत रहता था । 27 अक्टूबर सन् 1670 ई0 को उसके घर एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम लक्ष्मण देव रखा गया[101] लक्ष्मणदेव जब बड़ा हुआ, तो उसे शस्त्रविद्या और शिकार का बहुत शोक था ।[102] एक दिन शिकार करते हुए उसने एक हिरणी मार डाली, जोकि गर्भवती थी । जब उसका पेट चीरा गया, तो उसमें से दो बच्चे निकले जो उसकी आँखों के सामने ही तड़प—तड़प कर मर गये । इससे लक्ष्मणदेव को इतना वैराग्य हुआ कि वह शस्त्र छोड़कर एक वैष्णव साधु जानकीदास का चेला बन गया । अब उसका नाम माधोदास रखा गया ।[103]

देश में भ्रमण करता हुआ माधोदास दक्षिण में गोदावरी के तट पर पहुँचा ओर वह जगह उसे पसन्द आ गयी । उसने वहीं पर अपना डेरा डाल दिया । माधोदास का ऐसा स्वभाव बन गया था कि साधु सन्तों को तंग करके उसे बड़ा मजा आता था । इस उद्देश्य के लिए वह एक विशेष पलंग भी रखे हुए था, जिस पर साधु—सन्तों को बिठाकर वह अपने मंत्र के बल से पंलग को उलट देता था ।[104]

चार—पाँच दिन आराम करने के पश्चात् गुरू गोविन्द सिंह कुछ सिक्खों को लेकर माधोदास को लेकर माधोदास के डेरे में गये । माधोदास के बारे में गुरूजी को दादू दुआरे के महन्त जैतराम ने पहले से ही बता रखा था ।[105] जब गुरूजी माधोदास के डेरे पर पहुँचे, तो वह वहाँ नहीं था । गुरू जी उसी पलंग पर जाकर बैठ गये । इधर सिक्खों ने डेरे में बंधे हुए कुछ बकरे लटका दिये और मांस पकाना शुरू कर दिया ।[106] जब माधोदास के चेलों ने इसकी सूचना उसे दी, तो उसके तन—बदन में आग लग गई। वह डेरे में आया और अपनी गुप्त शक्तियों से पलंग को उलटाना चाहा, लेकिन असफल रहा । हार कर वह गुरूजी के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा मांग कर कहने लगा कि मैं तेरा बन्दा हूँ। गुरूजी ने उसे क्षमा कर

101. सोहन सिंह सीलत, बंदा सिंह शहीद, पृ0—7
102. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0—239
103. सोहन सिंह सीलत, बंदा सिंह शहीद, पृ0—8
104. वही, पृ0— 10
105. गंडा सिंह, बन्दा सिंह, बहादुर, पृ0— 12
106. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 270

दिया और विधिवत् अमृत पिलाकर उसे अपना सिक्ख बना लिया । उसका नाम बंदा सिंह रखा और उसे बहादुर का खिताब दिया ।[107] इसके बाद उन्होंने बन्दा सिंह बहादुर को पंजाब जाने का आदेश दिया और उसे शक्ति द्वारा वह उद्देश्य प्राप्त करने को कहा, जिसे वह न्याय द्वारा प्राप्त न कर सका था । उसे पंजाब में सिक्खों का नेता एवं सेनापति प्रतिष्ठित किया गया ।[108]

अब गुरूगोविन्द सिंह आध्यात्मिक कार्यो में लग गये । वे धर्म–प्रचार करते एवं नित्य भजन–कीर्तन में लगे रहते । इधर सरहिन्द का सूबेदार वजीरखाँ जानता था कि गुरू गोविन्द सिंह के मुगल बादशाह बहादुरशाह के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध बनते जा रहे हैं।[109] वह यह भी जानता था कि गुरूजी और बादशाह की मित्रता उसके लिए खतरनाक हो सकती है । इस बात की उसे बहुत चिन्ता हो गई । उसने अपनी इस चिन्ता को सदा के लिए खत्म करना चाहा और गुरू गोविन्द सिंह को कत्ल करने का षडयंत्र रचा । इस कुकृत्य के लिए उसने दो पठानों गुल खाँ और अताउल्ला खाँ[110] को रिश्वत देकर गुरूजी को कत्ल कर देने के लिए नन्देड़ भेज दिया ।

ये दोनों पठान नन्देड़ पहुँचकर गुरूजी के दीवान में आने–जाने लगे । इन्होंने कुछ सिक्खों से मित्रता भी स्थापित कर ली । इस प्रकार इन पर कोई विशेष शक की बात न रही । एक दिन सांयकाल दीवान–समाप्ति पर जब गुरूजी अपने तम्बू में गये, तो उन्हें अकेला पाकर इन्हें मौका मिल गया । गुल खाँ तम्बू में गया और गुरूजी पर खंजर से वार कर दिया। गुरूजी ने तुरन्त अपनी तलवार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया । शोर होने पर अताउल्ला खाँ भागने लगा, जिसे सिक्खों ने पकड़ कर मार डाला । मरते वक्त वे बता गये कि उन्हें सरहिन्द के सूबेदार बजीरखाँ ने भेजा था । यह घटना 18 अगस्त सन् 1708 ई0 की है ।[111] उसी वक्त एक जर्राह को लाया गया । उसने जख्म को धोकर साफ किया और सीकर मरहम–पट्टी कर दी । खंजर का यह जख्म बायीं ओर दिल के नीचे पेट में हुआ था । कुछ

107. सोहन सिंह सीलत, बंदा सिंह शहीद, पृ0–12
108. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग–2, पृ0– 145
109. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–240
110. ज्ञानी ज्ञान सिंह, तवारीख–गुरू–खालसा, पृ0 1432
111. वही, पृ0 1432

दिनों में जख्म भर गया और गुरू जी सामान्य स्थिति में आ गये और पहले की तरह दीवान भी लगाने लगे । जब बहादुरशाह को गुरूजी के जक्ष्मी होने का समाचार मिला तो उासने शाही जर्राह को भेजा, लेकिन तब तक जख्म सी दिया गया था । बादशाह ने गुरूजी के स्वास्थ्य लाभ की शुभ कामना के लिए एक कमान भेंटस्वरूप भेजा ।

एक दिन गुरूजी ने इसी सख्त कमान को पूरे जोर से सींचा । इससे जख्म फिर उधड़ गया और उसमें से खून निकलने लगा । गुरूजी ने अपना अन्तिम समय निकट आता देख लिया । उन्होंने सिक्खों को बुलाया और कहा कि आज से शख्सी गुरूपद का सिलसिला खत्म है । अब आप सदा गुरू–ग्रन्थ–साहब को गुरू मानेंगे । जो गुरू के दर्शन करना चाहेगा, वह गुरू–ग्रन्थ–साहब में उन्हें देख लेगा । जहाँ भी पांच सिक्ख इकट्ठे होंगे, मैं भी वहाँ उपस्थित रहूँगा ।[112] सिक्खों को सभी आवश्यक बातें समझाकर उसी दिन रात को 7 अक्टूबर सन् 1708 ई0 को गुरू गोविन्द सिंह ज्योति–ज्योति समा गये ।[113]

गुरू गोविन्द सिंह के ज्योति–ज्योति समाने के पश्चात् बादशाह बहादुरशाह से उनकी सम्पत्ति जब्त करने को कहा गया, लेकिन बादशाह ने कहा कि वह एक दरवेश की सम्पत्ति है, उसमें किसी भी प्रकार का दखल न दिया जाये ।

वास्तव में गुरू गोविन्द सिंह के सैनिक कार्यक्रम मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गये थे । बहादुरशाह के समय सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे ।[114] बाद में बन्दा सिंह बहादुर के समय यह सम्बन्ध संघर्षमय बन गये । गुरू गोविन्द सिंह के दो छोटे पुत्रों की सरहिन्द में निर्मम हत्या ने सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में भयंकर शत्रुता उत्पन्न कर दी थी, जिसका बाद में बन्दा सिंह बहादुर ने औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के अधीन सफल प्रयोग किया ।

राष्ट्रीयता की दृष्टि से गुरू गोविन्द सिंह का प्रयास अद्‌भुत था । गुरू तेगबहादुर के बलिदान के बाद समाज की काया पलटने के लिए उन्होंने खालसा पन्थ का निर्माण किया ।

---

111. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–241
112. कनिंघम, हिस्ट्री आफ द सिक्ख्स, पृ0– 92
113. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–244
114. वही, पृ0– 240

वे धर्मगुरू होते हुए भी देश में प्रजातांत्रिक भावना को जाग्रत करना चाहते थे । उन्होंने गुरु नानक के शुरू किये हुए पुनर्जागृति के कार्यों को सम्पूर्ण किया ।[115] उन्होंने लोगों में एकता की भावना पैदा की । उन्होंने भक्ति में शक्ति का संचार किया ।

गुरू गोविन्द सिंह ने लोगों में चरित्र की पवित्रता पर बड़ा बल दिया । यही कारण है कि काजी नूरमुहम्मद ने भी, जो अहमदशाह दुर्रानी के साथ 1764—65 ई0 में भारत आया था, कहा है कि सिक्खों में परत्रिया गमन का दोष नहीं है । वे झूठ नहीं बोलते और गरीब, बुड्ढे एवं स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते । उनकी युद्ध कला उत्तम है ।[116]

गुरू गोविन्द सिंह ने लोगों के दिलों में से व्यर्थ के आडम्बर और अन्धविश्वास निकाल दिये । आपका मनोहर व्यक्तित्व और शाही वाहो—जलाल संसार के इतिहास में एक अद्भुत घटना है ।[117] जहाँ आप तलवार के धनी थे, वहाँ कलम के भी उतने ही धनी थे । इतनी लड़ाईयों और युद्धों के बाबजूद भी आपने अकाल—स्तुति, शब्द—हजारे, जापुजी और सवैये जैसी मनोहर तथा आत्मतुष्ट करने वाली रचनायें रच डालीं । आप योद्धा होते हुए भी दयालु थे। आपके सारे युद्ध दीन और दुखियों की रक्षा या आत्म—रक्षा के लिए लड़े गये थे । आपने कुल 14 लड़ाईयाँ लड़ी ।[118]

गुरू गोविन्द सिंह के जीवन के अध्ययन के लए हमें तेज—रफ्तार घोड़े जितना तेज होना पड़ेगा, क्योंकि उन्होंने छोटी सी उम्र (42 साल) में ही वे महान् कार्य कर दिखाये जिन्हें समझने के लिए तेज बुद्धि की जरूरत है ।[119]

गुरू गोविन्द सिंह में जादू जैसी ताकत थी । उनके उपदेशों का साधारण लोगों पर जादुई असर होता था । उन्होंने पिछड़े हुए लोगों को प्रसिद्ध योद्धा बना दिया ।[120] जनता के मुर्दा ढाँचे में जीवन की नई लहर गुरू गोविन्द सिंह के उपदेशों ने डाली । वे एक धार्मिक नेता,

115. हरबंस सिंह, गुरू गोविन्द सिंह (पंजाबी अनुवाद अतरसिंह), पृ0— 146
116. हाजी नूरमुहम्मद, जंगनामा (फारसी)
117. हरबंस सिंह, वही, पृ0— 151
118. ठाकुर देसराज, सिक्ख इतिहास, पृ0— 208
119. कनिंघम, ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0—
120. मैकालिफ,हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग—5, पृ0—

शहंशाह, बलवान योद्धा और कुशल राजनीतिज्ञ थे ।[121] गुरू गोविन्द सिंह का उद्देश्य ऊँचा था और उन्होंने जिस कार्य को आरम्भ किया वह महान था ।[122]

उन्होंने भारत के इतिहास में नई ताकतों को जन्म दिया । उन्होंने पिछड़ी हुई श्रेणी से एक नई शक्तिशाली कौम बनाई । वे लोग जो पहले अपवित्र तथा नीच समझे जाते थे, अब उनका सम्मान होने लगा ।[123] गुरू गोविन्द सिंह के नेतृत्व में ऐसे मनुष्य भी रणक्षेत्र के सूरमे बन गये, जिन्होंने पहले कभी तलवार को हाथ भी नहीं लगाकर देखा था और कन्धों पर बन्दूक रखकर भी नहीं देखी थी । धोबी और नाई फौजों के सेनापति बन गये । उनके सामने बड़े–बड़े नवाब और राजा भी घबराने लगे ।[124]

एक ही व्यक्ति में सभी गुण मिलने बहुत कठिन हैं, पर गुरू गोविन्द सिंह हर तरह से इन गुणों में निपुण थे । वे महाकवि, धार्मिक नेता, चोटी के सुधारक, माने हुए विद्वान, बलवान योद्धा और अच्छे सेनापति थे ।[125]

वास्तव में गुरू गोविन्द सिंह के जीवनकाल में ही सिक्ख जत्थेबन्दी ने एक राजनैतिक संस्था का रूपधारण कर लिया था ।[126] आनन्दपुर एक तरह से सिक्खों का नगर राज्य बन गया था । आनन्दपुर और सिक्ख समाज में इनके शासन की व्यवस्था बड़ी ही सुन्दर थी । आय–व्यय का हिसाब रखने के लिए इन्होंने एक दीवान रख दिया था । नगर व समाज के अस्वस्थ लोगों की बीमारी में सहायता का भी समुचित प्रबन्ध था ।

सिक्ख अपने गुरूजी को सच्चा पातशाह कहकर पुकारते थे ।[127] वे रोजाना दरबार लगाते थे । सिक्खों के आपसी झगड़ों का पांच प्यारे इक्ट्ठे होकर निर्णय कर दिया करते थे । अपराधियों को दण्ड देने की कड़ी व्यवस्था थी । यहाँ तक कि एक बार स्वयं गुरू

121. गार्डन, द सिक्ख्स, पृ0–
122. सैय्यद मुहम्मद लतीफ, हिस्ट्री ऑफ द पंजाब ।
123. आई0बी0 बैनर्जी, एवोल्यूशन ऑफ द खालसा, भाग– , पृ0–
124. गोकुल चन्द नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म, पृ0–
125. लाला दौलतराय,
126. हरबंस सिंह, गुरू गोविन्द सिंह (पंजाबी अनुवाद अतरसिंह), पृ0– 154
127. गुलाम हुसैन, सियारूल–मुताखरिन, भाग–1, पृ0– 112

गोविन्द सिंह को भी जुर्माना भरना पड़ा था ।[128]

गुरूजी ऊँचे दर्जे के कवि और साहित्यकार भी थे । उनके दरबार में 52 कवि और लेखक रहा करते थे ।129 शस्त्रविद्या के साथ–साथ विद्या पढ़ने और पढ़ाने का भी समुचित प्रबन्ध था । गुरू गोविन्द सिंह कला–कौशल की उन्नति करने के हार्दिक इच्छुक थे। इतिहास के पन्नों में उनका नाम सदा अमर रहेगा ।

——00——

128. हरबंस सिंह, गुरू गोविन्द सिंह (पंजाबी अनुवाद अतरसिंह), पृ0– 134–135
"कहते हैं कि एक बार गुरूजी ने किसी कब्र की तरफ तीर झुका कर प्रणाम किया। इस पर खालसा ने आपत्ति की तथा गुरू जी को उनके स्वयं के शब्द कि 'ब्रत गौर मड़ी मट भूल न मानै याद करवायें और दण्ड भरने को कहा । गुरूजी खालसा पंथ की निडरता देखकर प्रसन्न हुएऔर जुर्माना भरने को तैयार हो गये । खालसा ने उन्हें 125 रूपये जुर्माना किया, जो गुरू जी ने भर दिया ।"

129. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह, पृ0–71

पंचम—अध्याय

।। प्रतिशोधपूर्ण काल (1708 से 1716तक) ।।

(1) सशस्त्र खालसा के प्रतिशोधपूर्ण कार्य :

गुरू गोविन्द सिंह की मृत्यु न केवल आन्तरिक क्षेत्र में एक निश्चित अन्तराल सुनिश्चित कर गई, अपितु सिक्ख राजनीति व सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों की दृष्टि से भी निर्णायक सिद्ध हुई । इन्हीं वर्षों में अन्तिम महान् मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु से मुगल सत्ता भी पराभव की ओर अग्रसर हुई । पराभव की इस प्रक्रिया में प्रथम प्रहार सिक्खों ने ही किया । इस प्रतिशोधपूर्ण काल में सिक्खों का नेतृत्व बन्दा सिंह बहादुर ने किया, जिसने सिक्ख गुरू के प्रति अपनी भक्ति एवं इस पन्थ के प्रति असीम श्रद्धा के फलस्वरूप शस्त्र धारण कर मुगल सत्ता के प्रति विद्रोह कर दिया ।

सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध इस समय विरोध की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । इस समय सिक्ख प्रतिशोध की अग्नि में जल रहे थे । गुरू गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् बन्दा सिंह बहादुर सिक्खों का राजनैतिक और सैनिक नेता हुआ । गुरूजी की मृत्यु का समाचार सुनकर उसका खून खौलने लगा । उसने पंजाब की ओर प्रस्थान कर दिया । वास्तव में सिक्खों के प्रति मुगल बादशाहों की निरंकुशता की नीति वंश–परम्परागत थी । इसी नीति के फलस्वरूप गुरू अर्जुनदेव व गुरू तेगबहादुर का वध हुआ और तत्पश्चात् षडयंत्र द्वारा गुरू गोविन्द सिंह का भी वध कर दिया गया ।

अपनी मृत्यु से पूर्व गुरू गोविन्द सिंह ने बन्दा सिंह बहादुर को सिक्खों का सेनापति नियुक्त किया था ।[1] इसलिए गुरू की मृत्युपरान्त उसने अपने लक्ष्यों को कार्यरूप देने के लिए पंजाब की ओर प्रस्थान किया और सिक्खों को आज्ञा दी कि मुगलों का शासन समाप्त करने के लिए वे हमेशा तैयार रहें तथा उसके साथ आकर मिलें ।[2] इस समय मुगल बादशाह बहादुरशाह गद्दी पर आसीन था । जिस समय बन्दा सिंह ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया, बहादुरशाह उस समय दक्षिण के संघर्ष में उलझा हुआ था । इसके अतिरिक्त राजपूताने में भी खुलेआम विद्रोह हो रहे थे ।[3] इस प्रकार बन्दा सिंह को पंजाब में अपनी गतिविधियों के लिए आसानी थी । सिक्ख मुगलों की असहिष्णुतापूर्ण नीति से तंग आ चुके थे । अतः बदला

1. इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग–1, पृ0– 93
2. वही, पृ0– 63–64
3. खुशबन्त सिंह, ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स, भाग–1, पृ0– 102

लेने के लिए तथा मुगलों को समाप्त कर सिक्ख–राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से अधिक से अधिक सिक्ख बन्दा सिंह बहादुर के झण्डे के नीचे एकत्र होने लगे । इस अवसर पर बन्दासिंह बहादुर ने स्वयं को एक अच्छा संगठनकर्ता भी सिद्ध किया।

अपने प्रथम प्रयास में ही बन्दा सिंह बहादुर ने सोनीपत को लूट दिया । वहाँ से आपूर्ति प्राप्त करके वे कैथल की ओर बढ़े ।[4] कैथल, सरहिन्द सरकार के अन्तर्गत एक परगना था । बन्दा सिंह कैथल के नजदीक भूना गांव में ठहरा हुआ था । उसे सूचना मिली कि शाही खजाना दिल्ली जा रहा है, तो बन्दा सिंह ने अकस्मात आक्रमण करके वह खजाना लूट लियाऔर अपने सैनिकों में बांट दिया ।[5]

जब यह समाचार कैथल के मुगल अधिकारी को मिला, तो वह 400 घुड़सवार लेकर आ पहुँचा ।[6] दोनों ओर से हुए संघर्ष में सिक्ख विजयी हुए । सिक्खों ने कैथल के मुगल अधिकारी को गिरफ्तार कर लिया और इस शर्त पर ही छोड़ा कि वह हमारे प्रत्येक सैनिक को एक घोड़ा देगा ।

अब बन्दा सिंह समाना की ओर बढा । समाना एक प्राचीन एवं समृद्ध नगर था और यहाँ पर 22 अमीर परिवार रहते थे।[7] इसलिए यहाँ से काफी धनराशि प्राप्त होने की सम्भावना थी । इसके अतिरिक्त यहाँ पर ही गुरू तेगबहादुर के हत्यारे जल्लाद का निवास भी था । अतः समाना के प्रति सिक्खों में बड़ा रोषथा । अतः 26 नवम्बर सन्1709 ई0 को अकस्मात समाना पर आक्रमण कर दिया गया और दिन छिपने से पूर्व ही सारे शहर धूल–घूसरित कर लूट लिया गया। इसके पश्चात् धुड़ाम को भी लूट लिया गया ।[8] तत्पश्चात् बन्दा सिंह का यह दल ठसका की ओर चल दिया । वहाँ के पठानों ने कोई मुकाबला नहीं किया ।9 परिणामस्वरूप यहाँपर कोई कत्लेआम न हुआ व सिक्ख नगर को लूटकर चलते बने । इसके पश्चात् शाहबाद की बारी आई । यहाँ पर भी संघर्ष न हुआ और रक्त की एक बूँद भी गिराये

4. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 22
5. हरिराम गुप्ता, स्टडीज़ इन लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0– 46
6. रतन सिंह भंगू, प्राचीन पन्थ प्रकाश, पृ0– 71
7. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 24
8. वही, पृ0– 28
9. डा0 गंडा सिंह , बन्दा सिंह बहादुर, पृ0– 43

बिना सिक्ख केवल सम्पत्ति लूट कर चल दिये ।[10] परन्तु मुस्तफाबाद में रक्तिम संघर्ष हुआ, जिसमें बन्दा सिंह बहादुर की विजय हुई । सारा शहर लूट लिया गया और अमीरों के मकान जलाकर राख कर दिये गये ।[11]

इसके बाद सिक्खों ने सढोरा की तरफ रूख किया। मार्ग में उन्हें कपूरी के हाकिम कदमुद्दीन के जुल्मों के बारे में जानकारी हुई । बन्दा सिंह ने तुरन्त आक्रमण कर दिया और शहर उजाड़ दिया । अब सिक्ख सढोरा जा पहुँचे ।[12] यहाँ का मुगल अधिकारी उस्मान खाँ था । वह बड़ा ही अत्याचारी और निर्दयी था। उसने सैयद बादशाह को इसलिए मरवा दिया था, क्योंकि उसने भंगानी के युद्ध में गुरू गोविन्द सिंह की सहायता की थी । उस्मान खाँ नगर में अपने कुकृत्यों के लिए बदनाम था । जब बन्दा सिंह ने सढोरा पर आक्रमण किया, तो अधिकांश नगरवासी बन्दा सिंह से मिल गये, क्योंकि इससे वे अपने हत्यारों से बदला ले सकते थे ।[13] सढोरा के किले को भूमिसात कर दिया गया ।[14] लोगों ने जो काजियों तथा शेखों से तंग आये हुए थे, बदला लेना शुरू कर दिया।[15] बहुत देर तक कत्लेआम होता रहा, इसलिए उस जगह को कत्लगढ़ी कहा जाता है ।[16]

सढोरा के पश्चात् मुखलिसगढ़ का पराभव कर इसका नाम लोहम, रख दिया गया ।[17] अब सिकख अम्बाला की ओर बढ़े[18] यहाँ लूटमार करके वे खजूड़ पर जा टूटे। वहाँ पर बहुत से हिन्दू सिक्खों के इस सैनिक दल से मिल गये । इसके साथ ही छत को भी लूट कर ध्वस्त कर दिया गया । अब सिक्ख धीरे–धीरे सरहिन्द की ओर बढ़ने लगे ।

सिक्खों के दिलों में सरहिन्द के लिए सबसे अधिक रोष व्याप्त था । इसी शहर

---

10. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 29
11. मैकालिफ,हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–5, पृ0— 247
12. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, भाग–1, पृ0— 327
13. डा0 गंडा सिंह , बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 49
14. मैकालिफ,हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख रिलीजन, भाग–5, पृ0— 247
15. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 65
16. मिर्जा मौहम्मद हारीसी, इबरतनामा, पृ0— 40
17. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म, पृ0— 102
18. सोहन सिंह, बन्दा द ब्रेव, पृ0— 76

में गुरू गोविन्द सिंह के दो छोटे पुत्र दीवारों में चुन दिये गये थे । यहाँ के सूबेदार वजीरखाँ ने गुरू गोविन्द सिंह को तंग करने में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भाग लिया था। अतः सिक्खों की दृष्टि में सरहिन्द शहर, सूबेदार वजीरखाँ तथा उसका एक अधिकारी सुच्चानन्द खटक रहे थे। यही कारण है कि जब बन्दा सिंह बहादुर ने सरहिन्द पर आक्रमण करने का विचार किया,तो बड़ी संख्यामें 'माला' और मालवा के सिक्ख उसकी सेना में उत्साह के साथ जा मिले ।[19] सिक्खों ने सरहिन्द पर आक्रमण करने की पर्याप्त तैयारी करनी आरम्भ कर दी ।

इधर वजीरखाँ भी सिक्खों की गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए था । उसने जिहाद का नारा लगाया और प्रत्येक मुसलमान से कहा कि वे सिक्खों के विरुद्ध इस पवित्र कार्य में उसकी सहायता करें ।[20] दोनों तरफ की तैयारियाँ पूर्ण हो गयीं थीं और दोनों सेनायें एक—दूसरे की ओर बढ़ रही थीं ।धार्मिक भावनाओं को भड़का दिया गया था ।

22 मई 1710 ई0को 'चप्पड चिड़ि' के मैदान में दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ गयीं ।[21] भयंकर युद्ध हुआ । मलेरकोटला के 'ख्वाजा अली' और 'शेर मुहम्मद' इस युद्ध में खेत रहे । मुसलमान फौज के पैर उखड़ गये । वजीर खाँ ने बचकर भाग निकलने के स्थान पर युद्ध जारी रखा और अन्ततः मारा गया। मुसलमानों की फौज तबाह हो गयी ।[22] वजीर खाँ की लाश एक वृक्ष पर टांग दी गयी और उसे कौओं और गिद्धों के रहम पर छोड़ दिया गया।[23] सुरचानन्द की नाक में नकेल डालकर उसे सड़कों पर घुमाया गया और जूते लगवाये गये । वह इसी दशा में मर गया ।[24] इस प्रकार बन्दा सिंह ने वजीर खाँ और सुरचानन्द से भयंकर प्रतिशोध लिया । सरहिन्द नगर को लूटकर तबाह कर दिया गया। लगभग दो करोड़ रूपये, जो वजीर खाँ और सुच्चानन्द के अधिकार में थे, बंदासिंह ने लूट लिये ।[25] सरहिन्द

19. खुशबन्त सिंह, ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस, भाग—1, पृ0— 102
20. प्रीतम सिंह गिल, हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, पृ0— 277
21. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 42
22. आहिवालि सुल्तीनी हिन्द, पृ0— 35
23. इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग—1, पृ0— 95—96
24. करम सिह, बन्दासिंह बहादुर, पृ0— 75
25. डा0 गंडा सिंह , बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 69

पर सिक्खों का पूर्ण अधिकार हो गया । सायंकाल को हिन्दुओं के हस्तक्षेप के कारण नगर पूरी तबाही से बच गया।[26]

जिस स्थान पर गुरू गोविन्द सिंह के दो छोटे पुत्र जिन्दा दीवारों में चुनवा दिये गये थे, वहाँ पर खालसा फौज ने अपनी केसरी झंडा लहरा दिया । सरहिन्द में खालसा–राज की स्थापना की विधिवत् घोषणा कर दी गयी । बन्दा सिंह बहादुर ने सरदार बाज सिंह को सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त किया । सरहिन्द के किले में सिक्खों ने दरबार लगाया तथा पकड़े हुए युद्ध के कैदियों पर मुकदमें चलाये और दण्ड दिये ।[27] लोहगढ़ को सिक्ख राज्य की राजधानी घोषित किया गया । सरहिन्द की विजय के दिन से सिक्ख राज्य का सम्वत् भी चलाया गया । बन्दा सिंह ने सिक्के भी ढलवाये तथा एक शाही मोहर भी बनवाई, जिस पर लिखा था–

"देग ऊ तेग ऊ फतेह ऊ नुसरत बेदरंग
याफत अज नानक गुरू गोविन्द सिंह ।।"[28]

यह मोहर शाही फरमानों पर लगाई जाने लगी । बन्दा सिंह ने विजित क्षेत्र में से जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया। इस प्रकार गरीब लोग अमृतपान कर खालसा में शामिल होने लगे । यही नहीं, अपितु उनारसा के लोग भी सिक्ख बन गये । इस पर उनारसा के फौजदार जलाल खाँ ने सभी सिक्खों को बन्दी बना लिया । बन्दा सिंह ने जलालाबाद की ओर प्रस्थान किया और मार्ग में सहारनपुर के फौजदार को भी पराजित किया । इसके पश्चात् 'अम्बेता' को लूटा और 'ननौता' के शेखजादों को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया ।[29]

अब बन्दा सिंह ने जलालाबाद का घेरा डाल दिया, लेकिन जालन्धर दोआब के सिक्खों द्वारा सहायता मांगने पर बन्दा सिंह को घेरा उठाकर वापस लौटना पड़ा। सरहिन्द की विजय ने सिक्खों को सारे भारत में पैर जमाने का अवसर दिया था। इससे उनमें स्वतंत्रता की नई भावना जाग्रत हुई।[30] परिणामस्वरूप सिक्खों ने जालन्धर, होशियारपुर,

26. करमसिंह, वही, पृ0–77
27. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 44
28 वही, प0– 53
29. हरिराम गुप्ता, स्टडीज़ इन द लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0– 47
30 डा0 गंडा सिंह , बन्दा सिंह बहादुर, पृ0– 100

बटाला, कलानौर और पठानकोट पर भी अधिकार कर लिया ।

सिक्ख निरन्तर विजय करते जा रहे थे । मुगल बादशाह बहादुरशाह को इसकी सूचना अजमेर में प्रथमबार 4 मई 1710 ई0 को मिली ।[31] उस समय वह दक्षिण से लौट रहा था । बहादुरशाह उसी समय आक्रमण करना चाहता था, लेकिन मुगल सेनापति मुनीम खाँ ने ऐसा करने से उसे रोक दिया । उसका विचार था कि उस विद्रोही को दबाने के लिए, जिसका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था, इतनी जल्दी करना मुगल बादशाह को शोभा नहीं देता । इसबात की भी पूर्ण सम्भावना थी कि यदि बहादुरशाह दक्षिण से कुछ समय और न लौटता, तो बन्दा सिंह बहादुर समस्त उत्तर भारत पर अधिकर कर लेता।[32]

अब बादशाह ने अवध के सूबेदार खान मुर्रान, मुरादाबाद के सूबेदार मुहम्मद अमीनखाँ और इलाहाबाद के सूबेदार खान–ए–जहाँ को दिल्ली के सूबेदार असदखान की सेना से सहयोग करने को कहा, जोकि सिक्खों के विरुद्ध कूच करने वाली थी।[33] बहादुरशाह दिल्ली पहुँचा और 25 अगस्त 1710 ई0 को यह घोषणा की कि सभी हिन्दू अपनी दाढ़ी कटवा दें, ताकि सिक्खों की पहचान हो सके । दाढ़ी न कटवाने वाले को सजा दी जाती थी और पकड़ कर उसकी दाढ़ी काट दी जाती थी ।[34]

22 अक्टूबर 1710 ई0 को शाही सेना सोनीपत पहुँच गयी । 30 अक्टूबर को सूचना मिली कि फिरोजखान मेवाती ने इन्दरी और करनाल के मध्य सिक्खों को परास्त किया है और 300 सिर भेज रहा है ।[35] 13 नवम्बर 1710 ई0को शाही सेना करनाल पहुँची और थानेश्वर के निकट एक अन्य लड़ाई में उसने सिक्खों को पराजित किया ।[36]

---

31. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पृ0– 59
32. माल्कम, स्कैच ऑफ द सिक्खस, पृ0– 99
33. इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग–1, पृ0– 105
34. बक्शीश सिंह निज्झर, पंजाब अंडर दा लेटर मुगल्स, पृ0– 57–58
35. इर्विन, लेटर मुगल्स, भाग–1, पृ0– 107
36. जी0सी0 नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खीज़्म, पृ0– 105

कुछ दिन बाद शाही सेना की सूचना मिली कि सिक्ख सढोरा के दक्षिण में 7000 घुड़सवार तथा 10000 पैदल फौज के साथ डेरे डालें हुए हैं । लेकिन सिक्खों ने सढोरा से भी प्रस्थान कर दिया और उस स्थान ने उत्तर पूर्व की पहाड़ियों में लोहगढ़ के किले में शरण ली ।

4 दिसम्बर 1710 ई0 को रूस्तम दिलखान शाही सेना का कैम्प लगाने के लिए ठीक स्थान देखने के लिए आगे बढ़ा । उसे जंगल में शत्रु सेना दिखाई दी । उसने तुरन्त आक्रमण कर दिया । दोनों ओर के बहुत से सैनिक मारे गये । शीघ्र ही बाकी शाही सेना भी आ पहुँची । सिक्ख सेनाहार गयी और पहाड़ियों के बीच खन्दकों में छिप गयी । शाही सेना ने सोम नदी के किनारे कैम्प लगाया ।

9 दिसम्बर 1710 ई0 को बहादुरशाह कैम्प में पहुँचा और उसने सिक्खों के विरुद्ध प्रस्थान की आज्ञा दी । मुनीमखां की सेना सिक्खों के निकट पहुँच गयी । अब सिक्ख हिम्मत हार रहे थे एवं सीधे संघर्ष से बच कर लोहगढ़ के किलें में जाने लगे ।[37] शाही सेना ने किले को घेर लिया ।

किले के अन्दर सिक्खों की दशा बहुत खतरनाक हो गयी । भूखे–प्यासे तथा थके–मांदे सिक्ख कब तक अन्दर रहते । अन्त में एक सिक्ख गुलाब सिंह ने बन्दा सिंह का भेष बनाया और ऊँचे स्थान पर बैठ गया । बंदासिंह कुछ सैनिकों सहित 10 दिसम्बर 1710 ई0 की रात्रि को शत्रु सेना से बचकर सुरक्षित स्थान पर पलायन कर गया और नाहन की रियासत में चला गया ।[38]

अगले दिन 11 दिसम्बर 1710 ई0 को किले पर आक्रमण किया गया और गुलाब सिंह को बन्दा सिंह समझकर पकड़ लिया गया, लेकन शीघ्र ही उन्हें अपनी भूल पर आश्चर्य हुआ । गुलाब सिंह को अन्य बन्दियों सहित मौत के घाट उतार दिया गया ।[39]

बन्दा सिंह के बच निकलने से बहादुरशाह को बहुत क्रोध आया । उसने हमीद

---

37. तेजा सिंह एण्ड गंडा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स्, भाग–1, पृ0– 93
38. गुरूदेव सिंह देऊल, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0– 74
39. वही, पृ0– 74

खाँ के नेतृत्व में एक सेना बन्दा सिंह को पकड़ने के लिए भेजी और स्वयं लाहौर चला गया ।

यह सेना बन्दासिंह को पकड़ने में असमर्थ रही । इससे बादशाह बहुत क्रोधित हुआ तथा उसने आज्ञा दी कि जहां भी कोई भी सिक्ख मिले, उसे मार डाला जाये । अतः बहुत से सिक्ख मारे गये ।[40] इसी मध्य बादशाह की लाहौर में ही मृत्यं हो गयी । बादशाह का मस्तिष्क असंयमित हो गया था और वह 27–28 फरवरी 1712 ई0 को चल बसा ।[41]

मुगल उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया। लाहौर शहर मैदान–ए–जंग बन गया । 14 से 28 मार्च तक तलवार चलती रही और तोंपें गरजतीं रहीं । अजीमशाह, जहानशाह और रफीउलशान मारे गये तथा जहांदारशाह 19 मार्च 1712 ई0 को नवीन बादशाह बना । उसने रूस्तम दिलखान, अलीवर्दीखान और मुखलिसखान को भी कत्ल करवा दिया । लगभग एक महीने पश्चात् जहांदारशाह दिल्ली चला गया और 'जबर्दस्त खाँ' को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया । जहांदारशाह असफल बादशाह सिद्ध हुआ ।

फर्रूखसियर इस समय बंगाल–बिहार का सूबेदार था । उसने कुछ अमीरों के साथ मिलकर 11 फरवरी 1713 ई0 को बादशाह जहांदारशाह को कत्ल कर दिया । और स्वयं बादशाह बन बैठा ।[42]

इस अनिश्चित मुगल राजनीति ने बन्दा सिंह को बहुत समय दे दिया था । इसलिए वह पुनः शक्ति संगठित करने में सफल रहा ।[43] बन्दा सिंह पहाड़ों से उतरा और उसने सढोरा पर अधिकार कर लिया । जिस शीघ्रता एवं तत्परता से वह पहाड़ों में घूमता, वह स्वयं में आश्चर्यजनक है । जम्मू से सढोरा तक पहुँचने में उसने बहुत कम समय लिया ।[44]

---

40. जी0एस0 छाबड़ा, द एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, भाग–1, पृ0– 334
41. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 106
42. वही, पृ0– 106–107
43. हरिराम गुप्ता, स्टडीज इन दा लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0– 48
44. गंडा सिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0– 181

सढौरा से वह लोहगढ़ चला गया और उसकी मरम्मत करवाई, जिसको दो वर्ष तक उसने सिक्खों की राजधानी बनाये रखा।[45] बिखरे हुए सिक्ख एकबार पुनः बन्दासिंह के झण्डे के नीचे एकत्र होने शुरू हो गये । एक प्रबल सेना का संगठन करके अपनी सुरक्षा के लिए उसने व्यास और रावी नदियों के बीच गुरदासपुर का निर्माण करवाया ।

फर्रूखसियर ने बादशाह बनने के उपरान्त सिक्खों को खत्म करने का दृढ़ निश्चय कर लिया । उसने लाहौर के सूबेदार अब्दुल सैयद खान को पंजाब में बन्दा सिंह को खत्म करने की विशेष आज्ञा दी । अब्दुल सैयदखान ने सढौरा तथा लोहगढ़ पर पुनः अधिकार कर लिया ।[46] बंदा सिंह पहाड़ों में चला गया, लेकिन फरवरी 1715 ई0 में बन्दा सिंह ने पुनः अपनी गतिविधियाँ तेज कर दीं ।[47] 17 अप्रैल 1715 ई0 को दिल्ली में बादशाह कोसूचना मिली कि बन्दा सिंह गुरूदास नंगल में है ।[48]

इसके परिणामस्वरूप गुरदासनंगल को घेर लिया गया । शाही सेना को पहाड़ी राजाओं की भी सहायता मिल रही थी ।[49] मुगलों ने किले पर घेरा डाल दिया तथा बन्दा सिंह को बाहरसे रसद मिलना मुश्किल हो गया । किले में जो कुछ था, उससे कुछ दिन निर्वाह होता रहा । अन्त में बन्दासिंह का अपने ही एक सहयोगी बिनोद सिंह से मतभेद हो गया । सिक्खों में दुर्बलता भी आ गयी थी। जीवन–रक्षा का कोई भी मार्ग दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था । इधर मुगल सेनापति दलेरजंग ने बन्दा सिंह से वायदा किया कि अगर वह किला समर्पित कर देगा, तो उसे बादशाह की तरफ से पूर्ण माफी दिलवा दी जायेगी और निर्वाह के लिए जागीर भी दे दी जायेगी ।[50]

---

45. गुरूदेव सिंह देऊल, बन्दा सिंह, बहादुर, पृ0– 81
46. तेजा सिंह एण्ड गंडा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स्, भाग–1, पृ0– 96
47. खुशबन्त सिंह, ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख्स, भाग–1, पृ0– 112–113
48. बक्शीश सिंह निज्झर, पंजाब अंडर दा लेटर मुगल्स, पृ0– 80
49. गुरूदेव सिंह देऊल, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0– 92
50. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 121

इस हालत में 17दिसम्बर 1715 ई0 को बन्दा सिंह ने गुरूदासनंगल का किला समर्पित कर दिया । मुगल अपना वायदा भूल गये और बन्दासिंह को कैद कर लिया गया । उसके साथी भी कैद कर लिये गये थे । यह किला 8 मास के पश्चात् विजय हुआ था ।[51] अन्त में 19 जून 1716 ई0 को बन्दा सिंह को दिल्ली में साथियों सहित कत्ल कर दिया गया ।[52] इस तरह सिक्खों में आपसी एकता का अभाव और कूटनीतिज्ञता की कमी ही बन्दासिंह की गिरफ्तारी का कारण बनी ।

****

51. गंडा सिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 210
52. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 131

(2) बन्दा सिंह बहादुर का बलिदान :

बन्दा सिंह बहादुर तथा उसके सभी साथी गिरफ्तार कर लिये गये थे । बन्दा सिंह को लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया गया । एक मुगल अफसर को भी पिंजरे में ही बन्दा सिंह के साथ बन्द कर दिया गया, ताकि जिस समय बन्दासिंह निकलने का प्रयत्न करे उसी समय खंजर घोंप दिया जाये ।[53]

गुरदासनंगल से चलकर शाही सेना बड़ी शानो–शौकत से लाहौर पहुँची । लाहौर में बन्दा सिंह एवं उसके 200 साथियों का जुलूस निकाला गया ।[54] लगभग 3000 सिक्खों के सिर नेजों पर टंगे हुए थे ।[55] देखने वालों की बहुत भीड़ थी । इन सभी को शहर में घुमाने के उपरान्त शाही जेल में बन्द कर दिया गया ।

अब यह जुलूस दिल्ली के लिए रवाना किया गया । 'जकरिया मान' ने सोचा कि थोड़े से सिक्ख बादशाह के सम्मुख पेश करने ठीक नहीं, अतः उसने रास्ते में से और सिक्ख पकड़ लिये ।[56] इसप्रकार 27 फरवरी 1716 ई0 को यह जुलूस दिल्ली पहुँचा ।[57] सबसे आगे सिक्खों के कटे हुए 3000 सिर नेजों तथा बाँसों पर टंगे हुए थे । इसके पीछे एक मरी हुई बिल्ली भी थी, जिसका यह मतलब था कि गुरदासनंगल के किले में से कोई चीज भी जिन्दा न बच सकी । इनके पीछे बन्दासिंह हाथी के ऊपर पिंजरे में था । इनके पीछे 740 के लगभग सिक्ख कैदी थे, जिनके सिरों पर लम्बी –लम्बी टोपियाँ पहना रखी थीं और मुँह काला किया हुआ था । इनके पीछे शाही सेनापति बड़ी शान से जा रहे थे । सड़क के दोनों और फौज खड़ी थी । देखने वालों की बहुत भीड़ थी । दिल्ली के बाजार और मकानों की छतें यह दृश्य देखने के लिए लोगों से खचाखच भरी हुई थीं ।[58]

जब जुलूस किले के पास पहुँचा, तो बादशाह के हुक्म से बन्दासिंह तथा उसके

---

53. करमसिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 177
54. वही, पृ0— 177
55. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 123
56. करमसिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 180
57. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0— 125
58. वही, पृ0 125—26

कुछ साथी मीर आतिश की निगरानी में किले में कैद कर दिये गये । बाकी सिक्ख कोतवाल सरबराहसाँ को सौंप दिये गये और उन्हें कत्ल कर देने का हुक्म दिया गया ।

5 मार्च 1716 ई0 को सिक्खों को मृत्युदण्ड देने का कार्य आरम्भ हुआ । कोतवाल ने शाही हुक्म पढ़कर सुनाया कि जो इस्लाम स्वीकार कर लेगा, उसके सभी कसूर माफ कर दिये जायेंगे, जो इन्कार करेगा वह कत्ल कर दिया जायेगा । किसी भी सिक्ख ने इस्लाम कबूल नहीं किया । अतः प्रत्येक दिन 100 सिक्ख कत्ल कर दिये जाते रहे । लगभग एक सप्ताह में यह सिक्ख कत्ल कर दिये गये ।[59]

बन्दासिंह तथा उसके कुछ प्रसिद्ध साथी अब भी किले में कैद थे । उन्हें इसलिए रखा गया था कि उनसे उन खजानों का पता चल सके, जो उन्होंने सरहिन्द की लूट में लूटे थे । इसी तरह तीन महीने बीत गये, लेकिन मुगल खजाने का पता लगाने में असफल रहे । अन्त में सभी साथियों सहित बन्दा सिंह के कत्ल की तैयारी होने लगी ।[60]

19 जून 1716 ई0 को बन्दा सिंह और उसके साथियों का आखिरी जुलूस निकाला गया । बन्दा सिंह को उस दिन शाही पोशाक पहनाई गई ।[61] बन्दा सिह को एक गन्दे हाथी पर सवार कियागया । उसकी गोद में चार वर्ष का पुत्र अजय सिंह था । बाकी सिक्ख उसके पीछे चल रहे थे। शहर में बाजारों से होता हुआ यह जुलूस जब ख्वाजा कुतुबुद्दीन अख्तियार काकी की दरगाह के पास पहुँचा, तो बन्दा सिंह को हाथी से उतार दिया गया । सभी को शाही हुक्म पढ़कर सुनाया गया कि जो इस्लाम कबूल कर लेगा उसे छोड़ दिया जायेगा, नहीं तो इन्कार करने पर कत्ल कर दिया जायेगा । किसी के भी इस्लाम कबूल करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था । अतः बन्दा सिंह के साथी बड़ी निर्दयता के साथ उसके सामने ही कत्ल कर दिये गये और उनके सिर नेजों पर टांग कर बन्दा सिंह के चारों ओर घुमाये गये । वह शान्त बैठा रहा ।[62]

---

59. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 127–128
60. वही, पृ0– 131
61. लतीफ, हिस्ट्री ऑफ पंजाब, पृ0– 280
62. सोहन सिंह सीतल, बन्दा सिंह शहीद, पृ0– 131

इसके पश्चात् बन्दा सिंह के पुत्र अजय सिंह को मार कर उसका कलेजा बन्दासिंह के मुँह में ठूँस दिया गया ।[63] तत्पश्चात् बन्दा सिंह की बारी आई । जल्लाद ने तेज छुरी से पहले उसकी दायीं आँख निकाल ली, फिर बायीं आँख निकाल ली । इसी तरह उसके पैर तथा हाथ काट दिये गये, किन्तु वह अब भी शान्त बैठा था । फिर लोहे के जंबूरे गर्म करके उसका मांस नोच लिया गया। सभी लोग हैरानी से यह दृश्य देख रहे थे । अन्त में जल्लाद ने तलवार से बन्दासिंह के शरीर के कई टुकड़े कर दिये ।[64]

******

---

63. डा0 गंडा सिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 232
64. डा0 गंडा सिंह, बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 234
 एलफिन्सटन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0— 670
 इर्विन, पृ0— 318—19,
 थरानटन, हिस्ट्री ऑफ पंजाब, पृ0— 180

(3) बन्दासिंह बहादुर के पश्चात् सिक्खों की राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक स्थिति :

बन्दा सिंह बहादुर की मृत्यु के पश्चात् सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों का इतिहास बहुत ही रुचिकर है । यह दो शक्तियों के बीच प्रभुसत्ता के लिए संघर्ष का इतिहास है, जो किसी भी जाति विशेष के उत्थान–पतन के इतिहास से अधिक रुचिकर है । मुगलों की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती चली गई और सिक्ख उन्नति करते गये ।

बन्दा सिंह बहादुर की मृत्यु के पश्चात् भी सिक्खों ने उसी वीरता, साहस तथा निर्भीकता से युद्ध जारी रखा । उन्होंने न केवल मुगलों को ही पंजाब से समाप्त किया, बल्कि मध्य एशिया के सबसे बड़े जनरल अहमदशाह अब्दाली का भी मुँह मोड़ दिया ।

बन्दासिंह की मृत्यु सिक्खमत के लिए एक करारी चोट थी ।[65] कोई भी कौम इतनी भयंकर हानि से इतनी जल्दी उत्थान नहीं कर सकती, जितनी जल्दी सिक्खों ने किया । पंजाब से सिक्खों की शक्ति समाप्त कर दी गई थी । बन्दा सिंह की मृत्यु के पश्चात् मुगलों द्वारा सिक्खों के विरुद्ध प्रचण्ड अभियान जारी किया गया । कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। परन्तु गुरू नानक और गुरू गोविन्द सिंह के उपदेश सिक्खों के हृदयों में अब भी प्रज्ज्वलित थे । चाहे किसान हो अथवा कारीगर, सबके हृदय में इन उपदेशों के प्रति आस्था, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम था । अतः वे इन अत्याचारों का प्रतिशोध लेकर अपनी इस पराजय को विजय में बदल देने का संकल्प कर चुके थे ।[66]

बन्दासिंह और उसके 740 साथियों को कत्ल करके बादशाह फर्रूखसियर का दिल अब भी ठण्डा नहीं हुआ था ।[67] वह तो सिक्खों को आमूल नष्ट कर देना चाहता था, अतः उसने एक शाही फरमान जारी किया कि 'जहाँ कहीं भी कोई सिक्ख मिले,उसे बिना किसी कारण देखते ही कत्ल कर दिया जाये । जो सिक्ख इस्लाम कबूल करले, उसकी जान बख्श दी जाये । सभी लोग अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा दें । जो मुंडवाने से इन्कार करे, उसे

65. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0– 36
66. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0– 116
67. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0– 36

सिक्ख समझकर कत्ल कर दिया जाये । जो व्यक्ति किसी सिक्ख को किसी भी तरह की सहायता पहुँचायें, उसे मौत की सजा दी जाये । जो व्यक्ति किसी सिक्ख को गिरफ्तार करने में मद्द करे या कत्ल करके उसका सिर पेश करे, उसे ईनाम दिया जायेगा ।''[68]

इस शाही फरमार से सारे देश में हलचल मच गई । हजारों सिक्ख तलवार के घाट उतार दिये गये । मुगल फौज, पुलिस तथा गांवों के चौधरी सिक्खों का शिकार करने लगे। जो व्यक्ति सिक्ख का सिर पेश करता, उसे हुकूमत की ओर से पुरस्कार दिया जाता। सिक्ख बड़ी ही दुविधा में फँस गये । वे पहाड़ों और जंगलों में जा छिपे । कुछ सिक्ख राज– दुविधा में फँस गये । वे पहाड़ों और जंगलों में जा छिपे । कुछ सिक्ख राजपूताने में बीकानेर के मरूस्थल में जा छिपे । वे जंगली जानवरों का मांस खाकर गुजारा करने लगे ।[69]

इस समय पंजाब का सूबेदार 'अब्दुल सम्मदखान था । उसकी फौजें निरन्तर सिक्खों का सफाया कर रही थीं । नित नये–नये अत्याचार ढ़ाये जाते हैं । इन रोज–रोज के जुल्मों तथा अत्याचारों ने सिक्खों को और भी अधिक सख्त तथा निडर बना दिया ।[70]

लगभग डेढ़ साल तक यही कार्यक्रम चलता रहा । बहुत से सिक्ख मार दिये गये । बहादुर सिक्खों ने इससे अधिक यातनाओं और अपमान का सामना इससे पूर्व कभी नहीं किया था।

इस समय पंजाब में राजनैतिक षड्यन्त्र होने लगे । दोआब में ईसा खाँ ने तथा कसूर के हुसैन खाँ बैरागी ने बगावत कर दी । अब्दुल सम्मदखान को अपना ध्यान सिक्खों से हटाकर इन बगावतों की तरफ लगाना पड़ा । ये बगावतें दिल्ली दरबार की शह पर हुई थीं।

---

68. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस्, पृ0— 89
    नारंग, पृ0— 201
    हरिराम गुप्ता, स्टडीज़ इन लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, पृ0— 50
    नन्दकुमार देव शर्मा, सिक्खों का उत्थान और पतन, पृ0— 76
69. सोहन सिंह सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0— 37
70. वही, पृ0— 37

इधर दिल्ली में भी राजनैतिक षड्यन्त्र जोरों पर ये । फर्रूखसियर सैयद भाईयों की सहायता से बादशाह बनाथा । वे यह चाहते थे कि बादशाह उनके अनुसार काम करे, लेकिन फर्रूखसियर उनकी शक्ति नष्ट करना चाहता था । इस तरह दरबार में दो दल बन गये, जो 1717 से 1719 ई0 तक ताज के लिए संघर्ष करते रहे । अन्त में सैयद भाईयों ने फर्रूखसियर को गद्दी से उतार दिया और 'रफीउदरजात' को बादशाह बनाया । लेकिन तीन महीने पश्चात् ही उसे जहर दे दिया गया और उसके भाई 'रफीउद्दौला' को बादशाह बनाया गया। फिर उसे भी जहर दे दिया गया ।[71] इस प्रकार मुहम्मदशाह को 1720 ई0 के अन्त में बादशाह बनाया गया ।

इस प्रकार दिल्ली के राजनैतिक षड्यंत्रों से सिक्खों को अच्छा अवसर मिल गया । वे जंगलों, पहाड़ों और मरूस्थलों से निकलकर पंजाब में वापस आ गये । माले और मालवे में आम सिक्ख नजर आने लगे । सन् 1716—17 के नरसंहार में सिक्खों के घर नष्ट कर दिये गये थे । जिन सिक्खों के परिवार पीछे पंजाब में ही रह गये थे, वे सब कत्ल कर दिये गयेथे । इस प्रकार ये सिक्ख पंजाब में आकर प्रतिशोध की अग्नि से भड़क उठे । उन्होंने लूटमार शुरू कर दी ।

सबसे पहले उन्होंने उन गद्दारों को सजा देना चाहा, जिन्होंने ईनाम के लालच में उनके साथ वे—वफाई की थी । इसके अतिरिक्त सिक्खों ने उन मुगल कर्मचारियों को भी न छोड़ा, जिन्होंने सिक्खों की अनुपस्थिति में उनकी बीबी—बच्चों पर जुल्म ढाये थे ।[72]

इस लूटमार से पंजाब में गड़बड़ पैदा हो गई। जगह—जगह चोरी और डाका डालने की वारदातें आम होने लगीं । पंजाब में असुरक्षा फैलती गई। पुलिस सिक्खों से डरती थी, अतः वह गरीब किसानों पर अत्याचार कर अपना गुस्सा ठण्डा कर लेती थी। इससे गरीब लोग तंग होकर सिक्खों की शरण में आने लगे। इससे सिक्खों की संगठन—शक्ति बढ़ने लगी।[73]

---

71. हरचरन दास, वहार गुलजार शुजाई पृ0— 384 के अनुसार दोनों भाईयों को सैयद भाईयों ने जहर दे दिया था ।
72. जी0सी0 नारंग, सिक्ख मत दा परिवर्तन, पृ0— 129
73. एस0एस0 सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0— 41

इस प्रकार 1720 ई0 के लगभग कुछ सिक्खों ने लड़ाई करना छोड़ दिया और गुरूद्वारों में जाकर धार्मिक कार्यों में लग गये । कुछ सिक्ख अपने—अपने गांवों में जाकर खेतीवाड़ी के कार्यों में व्यस्त हो गये । इस प्रकार 1720 ई0 के लगभग सिक्खों की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति सामान्य होने लगी । सन् 1721 ई0 की वैशाखी अमृतसर में बड़ी धूमधाम से मनाई गई ।[74] अतः यह पूर्ण काल सिक्खों एवं मुगलों के मध्य धातों एवं प्रतिघातों का काल था, जिसमें सिक्खों का भारी संहार हुआ था । पर इससे उनकी बलिदान की भावना बढ़ी ही थी,नष्ट नहीं हुई थी ।

****

74. एस0एस0 सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0— 39

(4) बन्दा सिंह बहादुर का इतिहास में महत्त्व :

संसार के अधिकतर महान् लोग गरीब घरों में ही पैदा हुए हैं । इसी तरह बन्दा सिंह बहादुर भी गरीब घर में पैदा हुए थे ।[75] इन्होंने जीवन में तीन बार पलटा खाया । पहले वे एक मनचले शिकारी थे । इसके बाद वे वैरागी बन कर देश–भ्रमण के लिए चल पड़े और दक्षिण में गोदावरी के तट पर डेरा डाल दिया ।

यहीं पर बन्दा सिंह बहादुर को गुरू गोविन्द सिंह मिले और बन्दा सिंह के जीवन ने एक बार फिर पल्टा खाया । गुरू गोविन्द सिंह ने उन्हें अमृतपान करवा कर अपना सिक्ख बनाया और पंजाब में हो रहे अत्याचारों के बारे में बताया । इससे बन्दासिंह का खून खोल उठा तथा उसने दिल में जोश की ज्वाला लिए हुए पंजाब की ओर प्रस्थान कर दिया ।

पंजाब में आकर बन्दासिंह ने सिक्खों को एकत्र किया और अत्याचारों के विरुद्ध एक लम्बा संघर्ष शुरू कर दिया । सिक्ख पहले से ही प्रतिशोध की अग्नि में जल रहे थे। बन्दासिंह बहादुर का नेतृत्व साहस मुगलों के विरुद्ध सिक्खों के प्रतिशोध को प्रज्ज्वलित किए हुए था । यह ठीक है कि सिक्खों के स्वभाव में क्रान्ति लाकर उन्हें नया जीवनदान देने वाले गुरू गोविन्द सिंह ही थे, परन्तु यह बात निर्विवाद माननी पड़ेगी कि सबसे पहले बन्दासिंह बहादुर ने ही उन्हें युद्ध में लड़ना और विजय प्राप्त करना सिखाया ।[76]

बन्दा सिंह बहादुर सिक्खों के प्रथम राजनैतिक नेता थे । वह एक कुशल योद्धा थे । वह युद्ध–नीति में भी निपुण थे । वे मुगल, जिनसे सारा हिन्दुस्तान डरता था, बन्दा सिंह की छोटी–छोटी सैनिक टुकड़ियों के आगे हथियार डाल देते थे ।[77] सढोरा, समाना तथा सरहिन्द की लड़ाईयाँ बन्दा सिंह के रणकौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

बन्दा सिंह ने सबसे पहले सिक्ख–राज्य की स्थापना की थी । वह एक सफल शासन–प्रबन्धक भी थे । लोहगढ़ को राजधानी के लिए चुनना उनकी सफल राजनीति एवं शासन–कुशलता का प्रमाण है । वह पहले शासक थे, जिन्होंने अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में से

75. एस0एस0 सीतल, सिक्ख राज किवें बनिया, पृ0– 7
76. जी0सी0 नारंग, सिक्ख मत दा परिवर्तन, पृ0– 122–23

जमींदारी प्रथा खत्म की थी । इससे जमींदार लोग उनके विरुद्ध हो गये, लेकिन बन्दा सिंह ने उनकी कोई परवाह न की और न ही बड़े लोगों ने कोई सम्बन्ध ही रखा । उसने गरीबों तथा पीड़ितों की सहायता की तथा उन्हीं पर भरोसा रखा ।

इसके अतिरिक्त वे बहुत दयावान भी थे । जब भी कोई उनके पास आता, तो उसे अमृतपान करवाकर सिक्ख बना लेते । एक सरकारी कर्मचारी दीनदारखाँ, सरहिन्द के अखबार—नवीस मीर नसीरूद्दीन तथा छज्जू जाट आदि ने बन्दासिंह से अमृतपान करके सिक्खधर्म में प्रवेश किया ।[78] वे जोर—जुल्म से किसी का धर्म परिवर्तन करने के विरुद्ध थे । उनकी फौज में बहुत भारी संख्या मुसलमानों की थी, जिन्हें नमाज पढ़ने और अपने धर्माचरण की पूरी छूट थी ।[79]

बन्दा सिंह की महान् सफलताओं ने सिक्खों को यह प्रतिष्ठा प्रदान की, जो उन्हें पहले कभी भी प्राप्त नहीं हुई थी ।[80] यही कारण थे कि वे बन्दा सिंह का बहुत सम्मान करते थे । और उसके इशारों पर जान तक देने को तैयार थे । उन्होंने मरते दम तक बन्दा सिंह का साथ दिया और अपने धर्म पर अडिग रहे ।[81]

बन्दासिंह लोगों के प्रतिनिधि के रूप में लड़ रहा था । उसका उद्देश्य लोगों

---

77. शिरोमणि सिक्ख समाज, बाबा बन्दासिंह बहादुर, पृ0— 54
78. वही, पृ0— 55
79. कलानोर से 28—4—1711 ई0 को बहादुरशाह को भेजी गई सरकारी रिपोर्ट में कहा गया है कि— बन्दासिंह ने वायदा किया हुआ था कि मैं मुसलमानों को कोई कष्ट नहीं देता। जो भी मुसलमान उससे मिलना चाहता है, वह उसकी तनख्वाह नियत कर देता है और उसका ध्यान रखता है । उसने नमाज और सुत्बा पढ़ने की पूरी छूट दे रखी है । इसलिए 5000 मुसलमान उसके साथी बन गये हैं और सिक्ख फौज में बांग देने और नमाज पढ़ने से सुख पा रहे हैं ।, शिरोमणि सिक्ख समाज, बाबा बन्दा सिंह बहादुर, पृ0— 62
80. जी0सी0 नारंग, सिक्ख मत दा परिवर्तन, पृ0— 123
81. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दो कर्मचारियों— सर जॉन सरमैन और एडवर्ड स्टीफैन्सन ने सिक्खों का 5 मार्च 1716 का कत्ले—आम अपनी आँखों से देखा था । उन्होंने 10 मार्च 1716 ई0 कोकम्पनी के प्रधान को एक चिट्ठी लिखी । इसमें लिखा था कि यह कोई अदभुत बात नहीं कि वे (कत्ल हो रहे सिक्ख) किस धैर्य से अपनी किस्मत के फैसले को प्रधान करते हैं । अन्त तक यह पता नहीं चला कि एक भी सिक्ख ने अपना धर्म त्यागा हो।
    शिरोमणि सिक्ख समाज, बाबा बन्दासिंह बहादुर, पृ0— 49

का उद्देश्य था । वह किसी व्यक्ति विशेष या मुगल बादशाह के विरुद्ध नहीं लड़ रहा था, बल्कि यह अत्याचार के विरुद्ध लोगों का जागरण था या शासक और शासितों के बीच युद्ध था।[82] बन्दासिंह का युग एक नाटक की तरह हैं । इस नाटक की भाषा गुरू गोविन्द सिंह ने निर्मित की थी । अभिनेता भी गुरू गोविन्द सिंह ने ही तैयार किये थे । परन्तु वह बन्दासिंह ही था जो उन अभिनेताओं को लोगों के सामने लाया और उन्हें अच्छी तरह से अभिनय करना सिखाया ।[83]

गुरू गोविन्द सिंह ने जो नियम बनाये, उन नियमों को व्यावहारिकरूप देने वाला बन्दासिंह ही था । जो बीज गुरू गोविन्द सिंह ने बोया, उसकी फसल बन्दासिंह ने ही काटी थी ।[84]

इस प्रकार इस प्रतिशोधपूर्ण काल में बन्दासिंह ने सिक्खों के सैनिक संगठन को उग्र रूप में निर्मित कर अत्याचारों के विरुद्ध निर्ममता से प्रयुक्त किया । उसने ही सिक्ख प्रजाति में स्वाभिमान की भावना को चरम स्थिति पर पहुँचाकर उनकी राज्य की कल्पना की ओर पग बढ़ाये तथा आने वाले संघर्षो के लिए सैनिक तत्वों का निर्मित किया ।

—00—

---

82. करम सिंह, बन्दासिंह बहादुर, पृ0— 196
83. जी0सी0 नारंग, सिक्ख मत दा परिवर्तन, पृ0— 123
84. वही, पृ0— 123

षष्ठ—अध्याय

।। उपसंहार ।।

16वीं शताब्दी में पंजाब में सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों की नींव पड़ी । सिक्ख एवं मुगल ये दो संस्थायें भारत में एक ही काल में उदित हुई और समानान्तर रूप से विकास करती हुई अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचीं । दोनों के उद्‌भव, विकास तथा अवसान का काल एक सा ही है । 15वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में तथा 16वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारत की असामान्य परिस्थितियों के कारण ही दो अद्‌भुत तथा भिन्न संस्थाओं को जन्म लेने का अवसर प्राप्त हुआ ।

प्राचीन काल से ही पंजाब आक्रमणकारियों के लिए भारत का प्रवेश–द्वार रहा है। वास्तव में जिस आक्रमणकारी को पंजाब नहीं रोक सका, उसने अपने कदमों से सारे भारत को रौंद डाला । स्वाभाविक्तः बाबर भी भारत–विजय के लिए इच्छुक था और उसकी यह इच्छा इस कारण, कि उसका पूर्वज अमीर तैमूर एक बार भारत–विजय कर चुका था, और भी अधिक बलवती हो उठी थी । पंजाब में चारों ओर की अराजकता का लाभ उठाकर बाबर को अपनी इच्छा–पूर्ति का अवसर प्राप्त हो गया और उसने भारत में मुगलवंश के शासन की स्थापना की । दूसरी ओर गुरू नानकदेव ने सामाजिक–असमानता तथा धार्मिक असहिष्णुता से पीड़ित समाज को मुक्ति दिलाने के प्रयोजन से सिक्ख धर्म की स्थापना की । अतः इन दोनों संस्थाओं की स्थापना के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी थीं । इन दोनों की प्रकृति तथा क्षेत्र में अन्तर अवश्य था– एक भौतिकताकी छाप लिए हुए थी और दूसरी आध्यात्मिकता का बोध कराती थी । फलतः दोनों संस्थाओं द्वारा लक्ष्य–प्राप्ति के लिए उठाये गये पगों पर ही सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों की आधारशिला का निर्माण हुआ ।

बाबर तथा गुरू नानक का एक साथ आगमन हुआ और आश्चर्यजनक बात यह है कि अन्तिम महान् मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही दसवें तथा अन्तिम गुरू गोविन्द सिंह की भी मृत्यु हो गई । परन्तु इनके पश्चात् भी सिक्ख–मुगल–सम्बन्ध औरंगजेब के उत्तराधिकारियों एवं सिक्ख नेताओं के अधीन लगातार जारी रहे । इन सम्बन्धों की शुरूआत कोई मित्रता से नहीं हुई थी । गुरू नानक ने बाबर की आक्रमणकारी गतिविधियों की घोर निन्दा की तथा लोगों को राजनैतिक,

धार्मिक एवं सामाजिक जागृति प्रदान की । गुरू नानकदेव के पश्चात् चतुर्थ गुरु रामदास तक सिक्खधर्म केवल अपने प्रचार—कार्यों में ही संलग्न रहा और उसने तात्कालिक राजनीति से अपने आप को बचाये रखा । लेकिन अधिक देर तक वह स्वयं को राजनीति से बचाये न रख सका और राजनीति के अतिरिक्त इसमें सैनिक तत्वों का भी समावेश हो गया । गुरू अंगद, गुरू अमरदास तथा गुरू रामदास ने सिक्खधर्म का प्रचार चारों ओर पूरे व्यवस्थित ढंग से किया । परन्तु मुगल अपने शासन को स्थिर न रख सके थे । बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूँ जब भारत से पलायन कर रहा था, तो वह गोइंदवाल में गुरू अंगददेव से मिला । अतः हम देखते हैं कि हूमायूँ के काल तक मुगल—वंश स्थिरता प्राप्त नहीं कर सका था, जिसके कारण इस अवधि तक सिक्ख —मुगल—सम्बन्धों में स्पर्धा आने वाली कोई बात नहीं थी ।

सिक्खधर्म के पहले चारों गुरू पूरी तरह से आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे और सांसारिक तड़क—भड़क से परे थे । इसलिए मुगल बादशाह अकबर के समय यह सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे तथा शान्ति बनी रही । लेकिन गुरू अर्जुनदेव के समय से परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । सिक्खधर्म ने इस समय बहुत शक्ति प्राप्त कर ली थी, परन्तु मुगल बादशाह जहांगीर सिक्खों की इस बढ़ती हई शक्ति को कभी भी सहन नहीं कर सकता था । परिणामस्वरूप गुरू अर्जुनदेव को कैद कर मृत्युदण्ड दे दिया गया । मुगल बादशाह द्वारा किये गये इस धृणित कार्य ने सिक्खों को क्रोधित कर दिया । गुरू अर्जुनदेव के वध ने सिक्ख —मुगल—सम्बन्धों के स्वरूप को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया और इसके पश्चात् दोनों वर्गों में राजनैतिक स्पर्धा का जन्म हुआ । शान्तिमय सिक्ख जाति को सैनिक जाति बनना पड़ा । यद्यपि अभी तक सिक्ख मुगलों के विरुद्ध खुले विद्रोह के लिए तैयार नहीं थे, परन्तु गुरू अर्जुन देव के पुत्र गुरू हरगोविन्द ने सांसारिक एवं आध्यात्मिक दो तलवारें धारण कर, सिक्खों को संगठित किया और उन्हें सैनिक शिक्षा देनी प्रारम्भ की । जहांगीर का माथा ठनका और उसने गुरू हरगोविन्द को कैद कर लिया ।

परन्तु फिर भी मुगल बादशाह सिक्खों के साथ सीधी टक्कर लेने से कन्नी

कतराता था, अतः उसने गुरू हरगोविन्द को रिहा कर दिया । इसके पीछे यह कारण भी हो सकता है कि धर्म–निरपेक्ष मुगल बादशाह अकबर की मृत्यु हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ था और लोगों तथा स्वयं जहांगीर के दिमाग में अकबर की उदारवादिता की याद अभी ताजा थी । जहांगीर अकबर का पुत्र था, जबकि शाहजहां का पोता । अब अकबर से लेकर शाहजहां तक समय की दूरी बढ़ चुकी थी उदारवादिता का अन्त हो चुका था तथा रूढ़िवादिता का आधार तैयार हो चुका था । अतः मुगल बादशाह शाहजहां ही वह प्रथम बादशाह था, जिसने सिक्खों के विरुद्ध क्रियाशील विरोध का प्रारम्भ किया । गुरू हरगोविन्द ने शाहजहां के समय में शाही सेना से कईबार टक्कर ली और सफल होते रहे ।

गुरू हरगोविन्द ने अपने पौत्र हरराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया । इनके समय में सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में शान्ति बनी रही । गुरू हरराय का मुगल बादशाह शाहजहां के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार रहा । राजकुमार द्वारा भी गुरू का प्रशंसक था और उसने भी सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में मित्रता तथा शान्ति लाने में सक्रिय सहयोग दिया । शाहजहां के अन्तिम दिनों में हुए उत्तराधिकार–युद्ध में गुरू हरराय ने दारा के साथ सहानुभूति प्रगट की थी और उसे भाग जाने तथा औरंगजेब का रास्ता रोकने के लिए अपने 2200 घुड़सवार सैनिकों से उसकी सहायता की थी । जब औरंगजेब बादशाह बना, तो उसने गुरू हरराय को दिल्ली बुला भेजा । गुरूजी ने स्वयं न जाकर अपने पुत्र रामराय को भेज दिया । वह एक महत्वाकांक्षी युवक था । उसने गुरू–मर्यादा के विरुद्ध कार्य करके तथा अपने व्यक्तित्व एवं व्यवहार कुशलता से औरंगजेब की निकटता प्राप्त कर ली ।

गुरू हरराय की मृत्यु के पश्चात् उनका छोटा पुत्र हरकृषण उत्तराधिकारी बना। औरंगजेब के सहयोग से रामराय ने भी अपना अधिकार पाने की चेष्टा की, परन्तु सिक्ख–गुरू–उत्तराधिकार कोई राजनैतिक उत्तराधिकार की तरह न था । यह तो आध्यात्मिक उत्तराधिकार का विषय था, जहाँ केवल योग्यता ही मापदण्ड हुआ करती थी । इसलिए औरंगजेब भी ठोस रूप से रामराय का पक्षधर न बन सका ।

गुरू हरकृषण ज्यादा दिन जीवित न रह पाये और अपने उत्तराधिकार सम्बन्धी कुछ अस्पष्ट सी घोषणा करके ज्योति–ज्योति समा गये । उनका उत्तराधिकार सम्बन्धी अस्पष्ट आदेश गुरू तेगबहादुर के लिए ही था, जो सिक्खों के नवम गुरू बने । वे सर्वत्र उत्तरी भारत में सिक्ख–धर्म के प्रचार के लिए जीवन भर भ्रमण करते रहे और अन्ततः काश्मीरी पण्डितों की समस्या के कारण उन्हें औरंगजेब की धर्मान्धता का शिकार बनना पड़ा । इस तरह जिस स्पर्धा का जन्म गुरू अर्जुनदेव के समय में हुआ था, वह अपनी पराकाष्ठा पर गुरू तेगबहादुर के समय में पहुँच गई और गुरू तेगबहादुर का वध सिक्खों में एक बार पुनः परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण बना । क्योंकि इनके वध के बाद, गुरू अर्जुनदेव के समय से जो सिक्खों में सैनिक बनने का क्रम प्रारम्भ हुआ था, वह पूर्ण होने वाला था; या हम कह सकते हैं कि जो कार्य गुरू अर्जुनदेव के वध से प्रारम्भ हुआ था, वह गुरू तेगबहादुर के वध से पूर्ण हुआ। गुरू तेगबहादुर की शहीदी ने सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में भयंकर कटुता उत्पन्न कर दी और सिक्खों के क्रोध को शिखर पर पहुँचा दिया ।

अब सिक्ख गुरू गोविन्द सिंह के अधीन एकत्र हुए, जिन्होंने उन्हें एक शक्तिशाली तथा निपुण सैनिक सन्तों के दल में बदल दिया और उन्हें खालसा बना दिया। इस प्रकार सिक्ख–समुदाय पूर्णरूपेण एक सैनिक समुदाय बन गया । गुरू गोविन्द सिंह ने बुराई का अन्त करने के लिए सिक्खों को प्रेरित किया और कहा कि वे तब तक आराम से न बैठें, जब तक कि वे पंजाब के लोगों के जीवन और अस्तित्व को सुरक्षित न कर लें ।

इस प्रकार औरंगजेब की धर्मान्धता के कारण सिक्खों में हुए समय–परिवर्तन ने सिक्ख–मुगल–संघर्ष को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया । अब सिक्ख अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदैव तत्पर रहने लगे जिसे औरंगजेब सहन नहीं कर सकता था, परिणामस्वरूप गुरू गोविन्दसिंह को अपना सारा जीवन मुगल–संघर्ष में ही व्यतीत करना पड़ा । उनके दो पुत्र सिक्ख मुगल युद्ध में खेत रहे और और दो मासूम पुत्र मुगल बर्बरता का शिकार हो गये ।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् गुरू गोविन्द सिंह ने बाहदुरशाह को मुगल–उत्तराधिकार युद्ध में सहयोग दिया । इससे बहादुरशाह और गुरू के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम हुए, परन्तु शीघ्र ही 7 अक्टूबर 1708 ई0 को गुरू गोविन्दसिंह ज्योति–ज्योति समा गये। गुरूजी एवं मुगल बादशाह बहादुरशाह के बीच मित्रता से जो अच्छे सम्बन्धों की सम्भावना उत्पन्न हुई थी, वह शीघ्र ही समाप्त हो गई । गुरू गोविन्दसिंह ने अपने पश्चात् गुरू पद की परम्परा को समाप्त कर दिया । उन्होंने अब आदि–ग्रन्थ को ही गुरू की पद्वी प्रदान की । अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने बन्दासिंह बहादुर को सिक्खों का राजनैतिक तथा सैनिक नेतृत्व सौंपा ।

बन्दासिंह बहादुर के नेतृत्व में सिक्ख प्रतिशोध की अग्नि में जल रहे थे और गुरू तथा उनके पुत्रों की हत्या का बदला लेना चाहते थे। सिक्खों ने बड़ी वीरता से औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के विरुद्ध युद्ध लड़े और सफलता भी प्राप्त की । परन्तु बन्दासिह बहादुर ज्यादा समय तक मुगलों का प्रतिरोध न कर सका और अन्ततः गिरफ्तार होकर मुगलों की बर्बरता का शिकार बना । बन्दासिंह बहादुर की मृत्यु से कुछ समय के लिए सिक्खों के प्रभाव में क्षीणता आई और उधर मुगल–वंश भी औरंगजेब की मृत्यु के बाद तेजी से पतन की ओर अग्रसर हो चुका था ।

वास्तव में सिक्ख अब मुगलों से स्वतंत्र होने की इच्छा रखते थे और बन्दासिंह की मृत्यु के पश्चात् भी उन्होंने अपना स्वतंत्रता–संग्राम जारी रखा और अन्त में उन्हें सफलता भी मिली । सिक्ख–मुगल–सम्बन्धों में समय–समय पर जो परिवर्तन हुए और सम्बन्ध मित्रता से जो शत्रुतापूर्ण होते गये, उनके पीछे वास्तविक कारण मुगल बादशाहों की धर्मान्धता तथा असहिष्णुता की नीति के कारण सिक्खों की उभरती हुई शक्ति तथा मुगल बादशाहों द्वारा उसे सहन न करने की नीति थी । मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह आसानी से किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार गवांना नहीं चाहता और यही प्रवृत्ति मुगल बादशाहों की भी थी । वे भारत के अधिकारी थे और उस पर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाये रखना चाहते थे । इसके लिए यह जरूरी था कि वे अकेले ही शक्ति सम्पन्न हों । इधर मुगल बादशाहों की स्वयं की नीतियों के कारण ही सिक्ख

धार्मिक रूप के साथ—साथ राजनैतिक एवं सैनिक स्वरूप भी धारण किये जा रहे थे । इसलिए मुगलों का सिक्खों के इस स्वरूप से शंकित होना स्वाभाविक ही था । इसलिए वे सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे, जबकि सिक्खों की प्रगति जारी थी ।

वास्तव में वह महान् प्रेरणा जिसने सिक्ख—शक्ति के विकास को प्रोत्साहित किया और राजनैतिक संगठन में इसके परिवर्तन का जो तात्कालिक कारण बनी, वह उस समय की मुगल सरकार थी । सिक्खों को सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रूप से बिल्कुल गुलाम बनाने के लिए इस सरकार ने कोई कसर उठा न रखी थी । इसीलिए सिक्ख मुगलों से पंजाब को स्वतंत्र कराकर एक अलग राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे ।

धमकियाँ, कैद, बाधायें, जुर्माना, अत्याचार, फाँसी, अन्याय और कत्लेआम बगैरह ये सभी शस्त्र राष्ट्र के निर्माताओं के विरुद्ध एक—एक करके अजमाये गये, परन्तु गुरू नानक तथा गुरू गोविन्द सिंह के अनुयायियों ने प्रत्येक संकट का धैर्य तथा साहस के साथ सामना किया और प्रत्येक कठिन परीक्षा में सफल रहे । मुगलों की कठोर धर्मान्धता की नीति के परिणामस्वरूप सिक्ख स्वतंत्रता के लिए और भी अधिक उत्साहित होते गये और परिणामस्वरूप सिक्ख निरन्तर शक्ति पकड़ते गये, जबकि मुगल उत्तरोत्तर कमजोर होते गये । मुगल साम्राज्य के कमजोर तथा विलासी उत्तराधिकारियों, दरबार के षडयंत्रों एवं विभिन्न प्रान्तों के सूबेदारों के मध्य आपसी झगड़ों ने मुगल सल्तनत की शक्ति को क्षीण कर दिया और इस पर नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने लड़खड़ाते हुए साम्राज्य को घातक चोट पहुँचाई । इस राजनैतिक अस्थिरता के समय सिक्खों को शक्ति एकत्र करने तथा विकसित होने का अच्छा अवसर मिला । परिणामस्वरूप सिक्खों ने पंजाब को स्वतंत्र करा लिया । पंजाब की स्वतंत्रता ने सिक्ख—मुगल—सम्बन्धों के आधार का ही अन्त कर दिया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरू नानक देव ने सुप्त पंजाब को उस की जड़ता

से उठाने के लिए जिन शिक्षाओं का प्रचार किया था, वे एक ऐसी जाग्रत जाति को उत्पन्न करने वाली बनीं, जिसने न केवल सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्वतंत्रता ही प्राप्त की, बल्कि जिसने राजनैतिक स्वतंत्रता भी प्राप्त की।

——00——

परिशिष्ट

।। क, ख, ग, घ एवम् ङ ।।

परिशिष्ट—(क)

।। गुरूनानकदेव की जन्मतिथि के बारे में विचार ।।

गुरू नानकदेव की जन्मतिथि के बारे में इतिहासकार एक मत नहीं है । बहुत से इतिहासकार गुरू नानकदेव की जन्मतिथि कार्तिक मास मानते हैं, जबकि वैशाख मास मानने वालों की भी संख्या कम नहीं है ।

कार्तिक मास में गुरू नानकदेव के जन्म के बारे में बहुत से प्रमाणं मिलते हैं, लेकिन वे अधिक विश्वसनीय नहीं है । इसमें भाई बाला की जन्म साखी मुख्य है, लेकिन यह कोई ठोस प्रमाण नहीं है । दूसरा स्रोत भाई सन्तोख सिंह कृत नानक—प्रकाश है, जिसके अनुसार गुरू नानकदेव का जन्मदिन कार्तिक मास 1526 विक्रमी सम्वत् में हुआ था और मृत्यु आश्विन 1596 वि0 सम्वत् में हुई । इसका अर्थ यह हुआ कि गुरूजी 69 वर्ष और 11 मास जीवित रहे । परन्तु साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि गुरू नानक 70 वर्ष, 5 मास और 13 दिन जीवित रहे । इसलिए भाई सन्तोखसिंह द्वारा दी गई जन्मतिथि ठीक नहीं है।

वैशाख मास में गुरू नानकदेव के जन्म के बारे में भी बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जो अधिक विश्वसनीय प्रतीत होते हैं । बहुत से ऐसे निश्चित स्रोत हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि गुरू नानकदेव का जन्म वास्तव में ही वैशाख में हुआ था ।

इनमें भाईगुरूदास सबसे अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक स्रोत हैं, जो अपनी वारों में यह सिद्ध करता है कि गुरू नानकदेव का जन्म वैशाख में हुआ था । भाई मणिसिंह ने भी शान—रत्नावली में लिखा है । कि गुरू नानकदेव का जन्म वैशाख में हुआ था। इसके अतिरिक्त सभी जन्म साखियों में से सबसे अधिक विश्वास सेवादास की जन्म साखी पर किया जाता है । इसके अनुसार भी गुरू नानकदेव की जन्मतिथि वैशाख मास ही बताई गई है । सन् 1815 ई0 तक गुरूजी का जन्मोत्सव वैशाख मास में मनाये जाने के प्रमाण मिलते हैं ।

करम सिंह[1] भी गुरूजी का जन्मदिन वैशाख मास में मानता है और यही विचार मैकालिफ[2] का भी है । उसके अनुसार महाराजा रणजीत सिंह के समय तक गुरूजी का जन्मोत्सव वैशाख में मनाया जाता था । इसके अतिरिक्त यदि हम यह स्वीकार करें कि गुरू नानक का जन्म वैशाख मास 1526 विक्रमी सम्वत् में हुआ था और मृत्यु आश्विन 1596 में हुई थी, तो वह ठीक 70 वर्ष, 5 मास का समय बैठता है । इससे यही सिद्ध होता है कि गुरू नानकदेव का जन्म वैशाख मास में 1526 विक्रमी को हुआ था ।

****

1. करम सिंह, कार्तिक के बैशाख (पंजाबी)
2. मैकालिफ,

परिशिष्ट—(ख)

।। गुरूअर्जुनदेव के शत्रु तथा चन्दू ।।

गुरू अर्जुनदेव के बढ़ते हुए प्रभाव एवं सम्मान तथा मुगल बादशाह अकबर के साथ उनके मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के कारण बहुत से लोग गुरू अर्जुनदेव से ईर्ष्या करने लगे। पृथिया, गुरू अर्जुनदेव का बड़ा भाई होने के कारण अपने को गुरू—गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था । उसने मुगल अधिकारी सुलहीखां से गठजोड़ कर लिया । सुलहींखां की अचानक मृत्यु हो गई । तत्पश्चात् उसने सुलालीखाँ से सम्पर्क स्थापित कर लिया । इस प्रकार गुरू अर्जुन देव के विरुद्ध शत्रुओं का एक गुट तैयार हो गया । अकबर के समय इनका कोई षडयन्त्र सफल नहीं हुआ ।

अकबर के पश्चात् जहांगीर शासन पर आसीन हुआ । इसके काल में ये लोग फिर सिर उठाने लगे । जब गुरू अर्जुनदेव ने ग्रन्थ—साहब का सम्पादन किया था, तो अनेक भक्तों को निमन्त्रण दिया था, जिनमें छज्जू, काहना, शाह हुसैन तथा पीलू के नाम मुख्य हैं। गुरू अर्जुन देव ने इनकी रचनाओं में कुछ असंगतिगाँ बताकर उन्हें ग्रन्थ—साहब में दर्ज करने से इन्कार कर दिया । इस पर इन लोगों ने अपनी तौहीन समझी और वे गुरूजी के शत्रुओं से जा मिले । इनमें काहना मुख्य था । इसके अतिरिक्त शेख अहमद सिर हिन्दी तथा शेख बुखारी जैसे कट्टर मुसलमान भी गुरू अर्जुनदेव तथा सिक्खधर्म के विरुद्ध थे । गुरूजी के ये सभी शत्रु वास्तविक और ऐतिहासिक हैं और समकालीन इतिहास के ग्रन्थों में इनका वर्णन भी आता है ।

इन्हीं लोगों में चन्दूशाह का नाम भी मुख्यरूप से लिया जाता है जिसने गुरू अर्जुनदेव को शहीद करवाने में सबसे बढ़—चढ़ कर भाग लिया था । लेकिन किसी भी समकालीन इतिहास के ग्रन्थ में चन्दूशाह का वर्णन नहीं मिलता । चन्दूशाह वाली कहानी काल्पनिक है, जो बाद में जोड़ी गई है । कहानी इस प्रकार चलती है कि चन्दूशाह ने अपनी लड़की का रिश्ता करने के लिए पंडितों को भेजा। उन्होंने गुरू अर्जुनदेव के लड़के हरगोविन्द को पसन्द कर लिया । जब चन्दूशाह को इसका पता चला तो वह बहुत नाराज हुआ और उसने गुरू अर्जुनदेव के सम्बन्ध में अपमानजनक शब्द कहे । जब गुरूजी

को इस सम्बन्ध में खबर मिली, तो उन्होंने रिश्ता लेने से इन्कार कर दिया । क्षत्रिय के लिए यह असम्भव था कि एक बार अपनी लड़की के लिए वर चुनकर उसकी शादी कहीं और करें। अतः उसने गुरूजी से रिश्ता लेने की प्रार्थना की और बाद में डराया–धमकाया भी । इस पर भी गुरूजी अपने फैसले पर अडिग रहे । अब चन्दूशाह गुरूजी के शत्रुओं से जा मिला और गुरूजी को नष्ट करने पर तुल गया ।

जहांगीर जब खुसरो का विद्रोह दबाने के लिए लाहौर पहुँचा, तो गुरूजी के शत्रुओं को मौका मिल गया । उन्होंने बादशाह से कहा कि गुरू अर्जुनदेव ने खुसरो की सहायता की है, अतः वह बागी है । इस पर जहांगीर ने गुरूजी को लाहौर बुलवाकर कैद कर लिया और उन्हें चन्दूशाह, जोकि बादशाह का दीवान था, को सौंप दिया और जहांगीर स्वयं काश्मीर चला गया । बाद में चन्दूशाह ने गुरूजी से फिर आग्रह किया कि वह रिश्ता स्वीकार कर लें, नहीं तो उन्हें अत्यन्त कठिनाई से मारा जायेगा । गुरूजी ने इन्कार कर दिया । इस पर उन्हें तरह–तरह की यातनाऐं दी गयीं और अन्त में गाय की कच्ची खाल उतरवा कर गुरूजी के सामने रख दी और कहा कि मान जाओगे तो ठीक है, नहीं तो इसमें मढ़वा दूँगा । गुरूजी ने कहा कि वे रावी नदी में स्नान करने के बाद इसका उत्तर देंगे । रावी में स्नान करने के बाद गुरूजी ने प्राण त्याग दिये ।

इस कहानी को काल्पनिक सिद्ध करने के लिए हमारे पास बहुत से ऐतिहासिक स्रोत हैं । पहले तो यह कि अगर एक क्षत्रिय के लिए यह असम्भव है कि वह अपनी लड़की का रिश्ता एक जगह करके शादी दूसरी जगह करे, तो एक क्षत्रिय के लिए यह भी असम्भव है कि वह एक गाय को अपने हुक्म से मरवाये और फिर उसकी कच्ची खाल में एक हिन्दू (सिक्ख) को ही मढ़वा दे । चन्दूशाह का विरोध गुरू अर्जुनदेव से तो हो सकता है, लेकिन अपनी बिरादरी और समाज से नहीं । अगर वह यह हरकत करता, तो ब्राह्मण लोग तथा उसकी बिरादरी के लोग उसे अपने समाज और धर्म से निकाल देते ।[1]

इसके अतिरिक्त अगर चन्दूशाह होता तो बादशाह जहांगीर के लिए यह सबसे अच्छी बात थी, क्योंकि वह गुरू अर्जुनदेव को उसके हवाले कर देता और स्वयं उनकी हत्या

1. स्वामी कल्याणदास, बेमिसाल, शहीदी गुरू, अर्जुनदेव,पृ0– 331

हत्या के दोष से साफ बच जाता । लेकिन ऐसा न हो सका । जहांगीर ने स्वयं लिखा है कि मैंने हुक्म दिया कि अर्जुन को मेरे सामने पेश करो और उसके परिवार तथा बच्चों को मुर्तजा खां के हवाले कर दो ।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि गुरू अर्जुनदेव मुर्तजाखां के हवाले थे, न कि चन्दूशाह के ।

चन्दूशाह नाम का कोई भी दीवान जहांगीर के शासनकाल में नहीं था । गुरू अर्जुनदेव पर जितने भी अत्याचार हुए, वे सभी जहांगीर के आदेश पर मुतर्जाखां ने किये थे,चन्दूशाह का इसमें कोई हाथ नहीं था ।[3]

****

2. तुज्क–ए–जहांगीरी, पृ0– 35–36
3. डा0 गंडासिंह, सिक्ख इतिहास दे कुज कू इतिहासिक पत्तरे

परिशिष्ट–(ग)

।। गुरू हरगोविन्द की ग्वालियर से रिहाई के कारण ।।

गुरू हरगोविन्द की ग्वालियर के किले से रिहाई के दो कारण थे । पहला कारण तो परम्पराओं पर आधारित है । इसके अनुसार जहांगीर को रात में बहुत भयानक स्वप्न आते थे और वह भली प्रकार सो न सकता था । उसे यह बताया गया है कि यह सब गुरूजी को कैद करने के कारण हो रहा है । भाई जेठा ने जहांगीर को ठीक कर दिया, जिससे उसने गुरू हरगोविन्द की रिहाई के आदेश दिये ।

इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह है कि एक मुगल अधिकारी वजीरखां, जोकि गुरूजी का भक्त था, ने बादशाह को यह विश्वास दिला दिया थाकि गुरू निर्दोष हैं और अपने शत्रुओं के कारण व्यर्थ के षड्यंत्र का शिकार हुए हैं ।[1] मीयांमीर जो कि गुरूजी का घनिष्ठ मित्र था, वह बादशाह से मिला और उसने गुरूजी को छुड़वाने का सफल प्रयास किया ।[2] नूरजहां भी गुरूजी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थीं, अतः उसने भी बाहशाह को गुरू हरगोविन्द की रिहाई के लिए प्रेरित किया ।

जब गुरू हरगोविन्द ग्वालियर के किले में कैद थे, तो पंजाब से हजारों सिक्ख ग्वालियर जाते और किले की दीवारों को चूमते और वापिस आ जाते । सिक्खों की ऐसी भक्ति तथा श्रद्धा देखकर जहांगीर बहुत प्रभावित हुआ और उसने गुरूजी को रिहा कर दिया ।[3] कनिंघम भी इसी मत का समर्थन करता है ।[4]

वास्तव में इन सभी कारणों से जहांगीर प्रभावित हो गया और अन्ततः उसने गुरू हरगोविन्द को रिहा कर दिया । बाद में बादशाह और गुरूजी में मित्रता भी हो गई थी ।

******

---

1. मैकालिफ,
2. जी0सी0 नारंग
3. मोहसिन फानी, दबिस्तां
4. कनिंघम

परिशिष्ट—(घ)

।। गुरू तेगबहादुर के गद्दी नशीन होने की परिस्थितियाँ ।।

औरंगजेब के निमंत्रण पर गुरू हरकृष्ण दिल्ली पहुँचे हुए थे । आपको दिल्ली आये अभी कुछ ही दिन बीते थे कि आप 30 मार्च 1664 ई० को शीतला—पीड़ित होकर ज्योति—ज्योति समा गये । उन्होंने 'बाबा बकाले' के शब्दों से गुरू तेगबहादुर को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया ।

नये गुरू की नामजदगी की सूचना, जो बकाला ग्राम तक पहुँची, किसी न किसी कारण अधूरी तथा अस्पष्ट ही रही । परिणामस्वरूप अवसर का लाभ उठाकर कई स्वार्थी लोग गुरूगद्दी के झूठे दावेदार बन बैठे और अपने मसन्दों तथा प्रतिनिधियों के साथ बकाला ग्राम में अनेक मंजियाँ स्थापित कर लीं । सिक्ख परम्पराओं के अनुसार इन मंजियों की संख्या 22 है । धीरमल इस पाखण्ड में सबसे अग्रणी था । भोले—भाले सिक्खों के लिए, जो दूर—समीप से दर्शनार्थ आते, एक समस्या खड़ी हो गई है ।

कुछ महीने इसी प्रकार व्यतीत हुए और फिर दीवान दरधामल के नेतृत्व में दिल्ली की संगत ने आकर 11 अप्रैल 1664 ई० को गुरू तेगबहादुर जी को गुरू—मर्यादा अनुसार गुरूगद्दी सौंपी । टिक्के की रस्म बाबा बुड्ढाजी के लड़के बाबा गुरूदत्ताजी ने निभाई ।[1]

साधारण स्थिति में गुरूगद्दी की इस रस्म के साथ ही गद्दी के लिए चल रहे

---

1. भाट वही तलौदा परगना जींद खाता जलहाना बलौतों का (पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला) के अनुसार— दीवान दरधामल बेटा द्वारकादास छिब्बर का, पोता परागदास का, पड़पोता गोतम का, धौपतराय बेटा पेरे का, पोता गोतम छिब्बर का, जेठा बेटा माईदास का, पोता बलू का, पड़पोता मूले का, मणिराम बेटा माईदास का, पोता खलू का, जम्मू बेटा पदमे का, पोता कोले का, पड़पोता अंबीया का, गुरबक्श बेटा बाबे का, नातू बेटा बाबे का, पोते अमेदे के दिल्ली से गुरू हरकृषण जी महल अठवां की माता सुलक्खणी के साथ बकाला आये । साल सत्रह सौ इक्कीस मास भादों की अमावस शुक्रवार के दिन गुरू तेगबहादुर जी महल नावें को गुरू द्वारकादास बेटा गुरू अरजनी साहब का, पोता गुरु मोहरी का, की आज्ञा पा बाबा गुरूदित्ता जी ने गुरूआई का टिक्का किया।

उत्तराधिकार सम्बन्धी सभी विवाद खत्म हो जाने चाहिए थे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि उन पाखण्डी गुरूओं ने अपना अधिकार जमाने के लिए अपनी गतिविधियाँ ओर भी तेज कर दीं ।

गुरू तेगबहादुर इस विश्वास के साथ कि अन्त में सच्चाई की ही विजय होगी, अपना कार्य निरन्तर शान्तिपूर्वक करते रहे । गद्दी—नशीनी की रस्म के ठीक दो महीने पश्चात् 9 अक्टूबर 1664 ई0को बकाला ग्राम में एक महत्वपूर्ण घटना हुई, जिसके परिणामस्वरूप गुरूगद्दी के लिए चल रहे वाद—विवाद लगभग खत्म हो गये ।[2]

इस घटना का सम्बन्ध एक बड़ी रोचक साखी से है, जिसे मक्खन लाल लुबाने की साखी कहा जाता है । मक्खनशाह एक धनवान व्यापारी था। उसने किसी मुसीबत की घड़ी में गुरूजी के सम्मुख बिनती की थी कि यदि वह इस मुसीबत से बच गया, तो 500 मोहरें गुरूजी को भेंट चढ़ायेगा । ईश्वरीय कृपा से वह बाल—बाल बच गया और फिर वह कृतज्ञता ज्ञापित करने तथा 500 मोहरें भेंट चढ़ाने के लिए गुरूजी की खोज में बकाला गांव में आ पहुँचा ।[3] पाखण्डी गुरूओं की भीड़ को देखकर वह भ्रमित हो गया। वह बड़ा बुद्धिमान और अनुभवी था ।उसने 5—5 मोहरें भेंट करके सबको मत्था टेकना शुरू कर दिया । उसके दिल में यह विश्वास था कि जो सच्चा गुरू होगा, वह स्वयं ही शेष राशि मांग लेगा । जब उसने गुरू तेगबहादुर को 5 मोहरें भेंट कर माथा टेका, तो उसे अपनी इच्छानुसार प्रतिक्रिया मिली । गुरूजी ने पूछ ही लिया कि भाई हमारी शेष मोहरें कहां हैं ? मक्खनशाह ने शेष सभी मोहरें भेंट कर मत्था टेक दिया और छत पर चढ़कर जोर—जोर से पुकारने लगा— गुरू लाधों रे, गुरू लाधो रे, अर्थात् सच्चा गुरू मिल गया है । इसका परिणाम यह हुआ कि जिन्हें अभी तक

---

2. फौजासिंह, तारनसिंह— गुरू तेगबहादुर जीवन असे रचना, पृ0— 23
3. भाट बही तुमर बिजलौतों की के अनुसार— "मक्खनशाह बेटा दासे का, पोता अरये का.... ... लालचन्द मक्खनशाह का, चन्दूलाल मक्खनशाह का, सोलजई स्त्री मक्खनशाह की... साल सत्रह सौ इक्कीस की दीवाली शनिवार के दिन बकाला गांव में आईया, गुरू तेग—बहादुर महल नांवा के दरबार इकोत्र सो मोहर भेंट की साथ धुम्मा नाईक आईया बेटा काहने बिजलौत का ।"

   (इसी बही के अनुसार 101 मोहरें भेंट कीं, लेकिन सिक्ख परम्परानुरार 500 मोहरें भेंट की गई थीं ।) ।

भी भ्रम था, उनका समूचा भ्रम दूर हो गया । यह देखकर कुछ समझदार मंजीदारों ने अपना पड़ाव उठा लिया ।[4]

लेकिन धीरमल कुछ और ही मिट्टी का बना हुआ था । जो वह धोखे और पाखण्ड से हांसिल न कर सका था, अब उसे ताकत से प्राप्त करना चाहता था । उसने अपने मसन्दों के साथ षड़्यंत्र रचा और गुरू तेगबहादुर पर हमला बोल दिया । एक शीहें नामक मसन्द ने गुरू तेगबहादुर पर गोली भी चला दी, परन्तु निशाना चूक गया और गुरूजी बाल—बाल बच गये । गुरूजी का दरबार लूट लिया गया तथा सभी वस्तुऐं धीरमल के आदमी उठाकर ले गये । जब मक्खनशाह को इस बात का पता चला, तो उन्होंने जवाबी हमला किया और धीरमल का सामान लूट लिया तथा सभी दोषी व्यक्ति भी गिरफ्तार कर लिये और उन्हें गुरूजी के सामने पेश किया । गुरूजी ने सभी सामान लौटा देने का आदेश दिया और सभी दोषी भी मुक्त कर दिये गये । इस घटना के पश्चात् धीरमल का बकाला में टिके रहना असम्भव हो गया और वह अपने पहले स्थान करतारपुर वापस आ गया ।[5] इस प्रकार जैसाकि गुरू तेगबहादुर का विश्वास था, अन्त में सच्चाई की ही विजय हुई ।

******

4. पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, गुरू तेगबहादुर जीवन तथा रचना, पृ0— 12
5. फौजासिंह, तारनसिंह— गुरू तेगबहादुर जीवन असे रचना, पृ0— 25

परिशिष्ट—(ङ)

।। गुरू गोविन्द सिंह की जन्मतिथि के बारे में विचार ।।

गुरू गोविन्द सिंह की जन्मतिथि के बारे में भी इतिहासकारों में एकमत नहीं हैं। भाई रणधीर सिंह के अनुसार गुरू गोविन्द सिंह की जन्मतिथि 18 दिसम्बर 1669 ई0 है। उनके अनुसार जब गुरू गोविन्द सिंह ने पटना से आनन्दपुर की ओर प्रस्थान किया था, तो उनकी आयु मात्र 2 वर्ष की थी और गुरू तेगबहादुर की शहीदी के समय मात्र 5 वर्ष की थी। लेकिन हम इस मत से सहमत नहीं हैं, क्योंकि गुरूगोविन्द सिंह[1] ने स्वयं कहा है कि अपने पिता की शहीदी के समय वे धर्म—कर्म की जिम्मेदारी संभालने लायक थे ।

इर्विन[2] गुरू गोविन्द सिंह की जन्मतिथि सन् 1660 ई0 मानता है । उसने केसर सिंह कृत बनसावलीनामा को आधार बनाया है, जो विश्वसनीय नहीं है । साऊ साखी[3] के अनुसार भी गुरू गोविन्दसिंह की जन्मतिथि 1660 ई0 है और बूटेशाह[4] 1662 ई0 मानता है, लेकिन यह भी अविश्वसनीय स्रोत हैं ।

लेकिन लगभग सभी ऐतिहासिक ज्ञात प्रमाणों तथा गुरू—प्रणालियों के अनुसार गुरू गोविन्द सिंह का जन्म 22 दिसम्बर 1666 ई0[5] को ही हुआ था ।

******

---

1. गुरू गोविन्द सिंह, विचित्र नाटक
2. इर्विन
3. अतरसिंह द्वारा अनुवादित, साऊ साखी
4. बूटेशाह
5. प्रो0 साहब सिंह, जीवन वृत्तान्त गुरू गोविन्द सिंह

।। सहायक–ग्रन्थ–सूची ।।

सन्दर्भ—ग्रन्थ—सूची

(1) हिन्दी :

1. कनिंघम : सिक्खों का इतिहास (रमेश तिवारी एवं सुरेश तिवारी द्वारा अनुवादित), वाराणसी, 1965.

2. गोयलीय, अयोध्या प्रसाद : मुगल बादशाहों की कहानी उनकी जबानी, वाराणसी, 1968.

3. मजूमदार, रायचौधरी, एवं दत्त : भारत का बृहत् इतिहास, भाग—2, मद्रास, 1971.

4. रिजवी, एस0ए0ए0 : मुगलकालीन भारत—बाबर, (द्वारा अनुवादित), अलीगढ़ 1960

5. विद्यावाचस्पति, प्रो0 इन्दु : मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, बम्बई,1957.

6. शर्मा, श्रीराम : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, (सत्यनारायण दुबे द्वारा अनुवादित), आगरा ।

7. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल : मुगलकालीन भारत,आगरा, 1976.

8. सरकार, जदुनाथ : औरंगजेब, बम्बई, 1951.

9. सरकार, जदुनाथ : मुगल साम्राज्य का पतन, प्रथम खण्ड, आगरा, 1957.

10. सक्सेना, बनारसी प्रसाद : मुगल सम्राट शाहजहां, जयपुर 1974.

11. सतीश चन्द्र : उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, मेरठ, 1974.

12. सूरी, विद्यासागर : पंजाब का इतिहास, चण्डीगढ़, 1975.

13. त्रिपाठी, रामप्रसाद : मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन, इलाहाबाद, 1976.

(2) उर्दू :

14. कन्हैयालाल : तारीख—ए—पंजाब, लाहौर, 1881.

(3) पंजाबी :

15. अशोक, शमशेर सिंह : पंजाब का इतिहास, अमृतसर, 1966.

16. ईशरसिंह, ज्ञानी : बेसाख नहीं कतिक, देहली, 1970.

17. करम सिंह : कतिक के बेखाख, अमृतसर, 1913.

18. करम सिंह : बन्दा बहादुर, अमृतसर, 1907.

19. कोहली, सीताराम : फतेहनामा गुरू खालसाजी का, पटियाला, 1952.

20. गण्डा सिंह : बन्दा सिंह बहादुर, अमृतसर, 1964.

21. गण्डा सिंह : महाराज कोरामल बहादुर, अमृतसर, 1941.

22. गण्डा सिंह : सिक्ख इतिहास बारे, अमृतसर, 1942.

23. गण्डा सिंह : सिक्ख—इतिहास बल, लाहौर, 1945.

24. गुप्ता, हरिराम : सिक्ख इतिहास— नादिरशाह दे हमले तो महाराजा रणजीत सिंह तक, लुधियाना ।

25. गुरूदास, भाई : वारां, अमृतसर ।

26. गुरू गोविन्द सिंह : दशम ग्रन्थ या दसवीं पातशाही का ग्रन्थ ।

27. छिब्बर, केसर सिंह : बनसावला नामा दर्शन पातशाही दा, अमृतसर ।

28. तारन सिंह : दसमग्रन्थ रूप ते रस, चण्डीगढ़, 1967.

29. प्यारासिंह, दाता : सिक्ख इतिहास दे खूनी पतरे, देहली, 1966.

30. भंगू, रतन सिंह : प्राचीन पन्थ प्रकाश, अमृतसर, 1914.

31. मनमोहन सिंह : गुरूनानक अते भगती आन्दोलन, देहली,1970.

32. मेहरबानजी, सोढी : जन्मसाखी श्रीगुरूनानकदेव जी, अमृतसर, 1962.

33. सन्तोखसिंह : श्रीगुरूप्रताप सूरज ग्रन्थ, अमृतसर, 1934.

34. सरूपदास : महिमा प्रकाश वार तक

35. सतिवीर सिंह : साढा इतिहास, भाग 1–2, जालंधर, 1957, 66

36. सुक्खा सिंह : गुरू बिलास दसवीं पादशाही, लाहौर ।

37. सेनापत : श्रीगुरू सोभा, अमृतसर, 1925.

38. सोहन सिंह : बन्दा सिंह, बहादुर, लुधियाना, 1962.

39. ज्ञानसिंह, ज्ञानी : श्रीगुरूग्रन्थ प्रकाश, अमृतसर, 1880.

40. ज्ञानसिंह, ज्ञानी, : तवारीख गुरू खालसा, अमृतसर ।

41. ज्ञानसिंह, ज्ञानी : शमशेर खालसा, स्यालकोट

(4) अंग्रेजी :

42. अकबर, मौहम्मद : दि पंजाब अण्डर दा मुगल्ज़, देहली, 1974.

43. अगस्टस, फ्रेडरिक : दि एम्परर अकबर, भाग–1, देहली, 1973.

44. अशरफ, के0एम0 : लाइफ एण्ड कन्डीशन ऑफ दी पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, देहली, 1956.

45. अहूजा, एन0डी0 : दि ग्रेट गुरुनानक एण्ड दि मुस्लिम्स, चण्डीगढ़

46. आर्थर : दि सिक्खस्, प्रिन्सटन, 1946.

47. इलियट, एच0एम0 : तारीख–ए–सलीमशाही, दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐंज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, कलकत्ता, 1952.

48. इलियट एण्ड डाउसन : दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग 1–4, 1967–77.

49. इर्विन, विलियम : लेटर मुगल्स, कलकत्ता, 1922.

50. एडवर्ड्ज एस0एम0 एवं एच0एल0ओ0 गेरट : मुगल रूल इन इण्डिया, बम्बई, 1956.

51. करतार सिंह : लाइफ ऑफ गुरूगोविन्द सिंह, अमृतसर, 1933.

52. कनिंघम : दि एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, वाराणसी, 1963.

53. कीन, एच0जी0 : दी फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, देहली, 1971.

54. केनेडी : दि हिस्ट्री ऑफ दि ग्रेट मुगल्स, देहली, 1974

55. कोर्ट, हेनरी : हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस् । (द्वारा– अनुवादित), कलकत्ता, 1959.

56. कोहली, एस0एम0 : ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ आदिग्रन्थ, देहली, 1961.

57. खजान सिंह : हिस्ट्री एण्ड फिलॉसफी ऑफ दि सिक्ख रिलीजन, भाग–1, लाहौर, 1914.

58. खुशवन्द सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ दि सिक्ख्स, भाग–1, लण्डन, 1963.

59. ग्लैडविन : रेन ऑफ जहांगीर, कलकत्ता, 1788.

60. गण्डा सिंह : लाइफ ऑफ बन्दा सिंह बहादुर, अमृतसर, 1935.

61. गण्डासिंह : दि पंजाब पास्ट एण्ड प्रिजेंट (द्वारा अनुवादित), भाग—3, पटियाला, 1969

62. गफ, चार्ल्स एण्ड आर्थर डि इम्नेस : दि सिक्ख्स एण्ड दि सिक्ख वार्स, पटियाला, 1970.

63. गांधी, सुरजीत सिंह : हिस्ट्री ऑफ दि सिक्ख गुरूज, देहली, 1978.

64. गिल, प्रीतमसिंह : हिस्ट्री ऑफ सिक्ख नेशन, जालंधर, 1978.

65. गिल प्रीतम सिंह : गुरू तेगबहादुर, जालंधर, 1975.

66. गुप्ता, हरिराम : हिस्ट्री ऑफ सिक्ख गुरूज़, देहली, 1973.

67. गुप्ता, हरिराम : हिस्ट्री ऑफ दि सिक्ख, भाग—1, कलकत्ता, 1939

68. गुप्ता, हरिराम : स्टडीज़ इन दि लेटर मुगल हिस्ट्री ऑफ दि पंजाब, लाहौर, 1944

69. ग्रेवाल, जे0एस0 : गुरूनानक इन हिस्ट्री, चण्डीगढ़, 1969.

70. ग्रेवाल, जे0एस0 : फाम गुरूनानक टू महाराजा रणजीत सिंह, अमृतसर, 1972.

71. ग्रेवाल, जे0एस0 एण्ड एस0एस0 बल : गुरू गोविन्द सिंह, चण्डीगढ़, 1967.

72. गोर्डन, जे0एच0 : दि सिक्ख्स, लण्डन, 1904.

73. छावड़ा, जी0एस0 : दि एडवान्स स्टडी इन हिस्ट्री ऑफ दि पंजाब, भाग—1, जालंधर, 1960.

74. जरनल : जरनल ऑफ सिक्ख स्टडीज़, भाग—1, नं0—1, अमृतसर, फरवरी 1974.

75.	ट्रम्प, अरनेस्ट	:	दि आदिग्रन्थ, देहली, 1970.
76.	ट्रेवास्किस् एच0के0	:	दि लेण्ड ऑफ दि फाइव रिवर्स, ऑक्सफोर्ड, 1928.
77.	ट्रोयर एण्ड शिवा	:	दबिस्तां–ए–मजाहिब, (द्वारा अनुवादित), लण्डन, 1843.
78.	डाऊसन, जे0	:	क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू मैथोलॉजी एण्ड रिलीजन, 1928.
79.	डिलाईट, होईलैण्ड	:	दि एम्पायर ऑफ दि ग्रेट मुगल, देहली, 1974
80.	डोयल, जी0एस0	:	बन्दा बहादुर, जालंधर, 1972.
81.	ताराचन्द	:	इंफ्लूऐंस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद, 1954.
82.	तेजा सिंह	:	ग्रोथ ऑफ रिस्पान्सिबिलिटी इन सिक्खीज्म, बम्बई, 1942.
83.	तेजासिंह	:	आसा दी वार (द्वारा अनुवादित), अमृतसर, 1968.
84.	तेजासिंह एण्ड गंडासिंह	:	ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस्, भाग–1, बम्बई, 1950.
85.	नारंग, के0एस0 एण्ड एच0आर0 गुप्ता	:	हिस्ट्री ऑफ दि पंजाब, देहली, 1959.
86.	नारंग, गोकुलचन्द	:	ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिक्खीज्म, देहली, 1960
87.	नारायणसिंह	:	गुरूगोविन्दसिंह दि वारियर सेन्ट, चण्डीगढ़, 1967.
88.	निजझर, बक्शीशसिंह	:	पंजाब अण्डर दि सुल्तान्स, देहली, 1969.

89. निजझर, बक्शीशसिंह : पंजाब अण्डर दि ग्रेट मुगल्स, बम्बई, 1968.

90. निजझर, बक्शीशसिंह : पंजाब अण्डर दि लेटर मुगल्स, जालंधर, 1972.

91. निहरंजन राय : दि सिक्ख गुरूज़ एण्ड दि सिक्ख सोसाइटी, देहली, 1975.

92. पाण्डे, अवधबिहारी : लेटर मेडीवल इण्डिया, इलाहाबाद, 1967.

93. पानिक्कर, के0एम0 : ए सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, 1957.

94. प्राइस, डेविड : मेमोयर्स ऑफ दि एम्परर जहांगीर, (द्वारा अनुवादित), दिल्ली ।

95. पैन, सी0एच0 : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस्, लण्डन ।

96. फार्स्टर, जार्ज : ए जर्नी फाम बंगाल टू इंग्लैण्ड, भाग—1—2, लण्डन, 1808.

97. फैजा सिंह : मिलिटरी सिस्टम ऑफ दि सिक्खस्, दिल्ली, 1964.

98. बदायूनी, अब्दुल कादिर : मुन्तराब—उत्त—तवारीख, भाग 1—2, पटना, 1973.

99. बल, उपेन्द्रनाथ : दि रेन ऑफ औरंगजेब, लाहौर ।

100. बसु, के0के0 : दि तारीख—ए—मुबारकशाही, (द्वारा अनुवादित), बड़ौदा, 1932.

101. ब्राउन, जेम्स : इण्डिया ट्रेक्टस, लण्डन, 1788.

102. ब्रिजस, जान : हिस्ट्री ऑफ दि राइज़ ऑफ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग—1. कलकत्ता, 1966.

103. ब्रिजस, जान : सियर—उल—मुतारवहीन, (द्वारा अनुवादित), इलाहाबाद, 1924.

104. वृद्धा, प्रकाश : पॉलिटिकल एण्ड सोशल मूवमेंट्स इन पंजाब, देहली, 1964.

105. बेनी प्रसाद : हिस्ट्री ऑफ जहांगीर, इलाहाबाद, 1962.

106. बेनर्जी, अनिलचन्द्र : गुरूनानक टू गुरूगोविन्दसिंह, देहली, 1978.

107. बेनर्जी, इन्दुभूषण : एवोल्यूशन ऑफ दि खालसा, भाग—1—2, कलकत्ता, 1972.

108. भण्डारी, सुजानराय : दि इण्डिया ऑफ औरंगजेब, कलकत्ता, 1901.

109. मनूको : स्टोरिया डू मोगर, (इर्विन द्वारा अनुवादित), भाग 1—4, लंडन, 1907—1908.

110. मलिक, अर्जवदास : ऐन इण्डियन गुरिल्ला वार, देहली, 1975.

111. मालकम : स्केच ऑफ दि सिक्खस्, लण्डन, 1812.

112. मैकालिक, मेक्स आर्थर : दि सिक्ख रिलीजन, भाग—6, भाग 1—4, लण्डन, 1909, भाग 5—6, देहली, 1963.

113. मैकालिक, मैक्स आर्थर : लाइफ ऑफ गुरू तेगबहादुर, (द्वारा अनुवादित), पटियाला, 1971.

114. मैक ग्रेगर : दि हिस्ट्री ऑफ दि सिक्ख्स, भाग 1—2, लण्डन, 1846.

115. मैलीसन, जी0वी0 : अकबर एण्ड दि राइज़ ऑफ मुगल एम्पायर, अम्बाला, 1972.

116. मैलीसन, जी0वी0 : एम्परर अकबर, देहली, 1978.

117. राय चौधरी, एम0एल0 : दि स्टेट एण्ड रिलीजन इन मुगल इण्डिया, कलकत्ता ।

118. रोजर्स एण्ड बिबरीज : तुज्क–ए–जहांगीरी, (द्वारा अनुवादित), लण्डन, 1909.

119. लतीफ सैय्यद मौहम्मद : हिस्ट्री ऑफ दि पंजाब, कलकत्ता, 1891.

120. लक्ष्मन सिंह, भगत : सिक्ख मार्टियर्स, मद्रास, 1928.

121. लेनपूल, एस0 : औरंगजेब, बम्बई ।

122. लेनपूल, एस0 : औरंगजेब एण्ड दि डिवे ऑफ दि मुगल एम्पायर, आक्सफोर्ड, 1908.

123. बोहरा, आर0एन0 : आर्टिकल इन पंजाब हिस्ट्री कान्फ्रेन्स, ट्वेल्फथ सेशन, मार्च 17–19, 1978.

124. शर्मा, श्रीराम : दि रिलीजस पॉलिसी ऑफ दि मुगल एम्परर्स, बम्बई, 1962.

125. शर्मा, श्रीराम : मुगल गवर्नमेंट एण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन, बम्बई, 1951.

126. सतीशचन्द्र : दि पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स ऐट दि मुगल कोर्ट, अलीगढ़, 1959.

127. सरकार, जदुनाथ : इण्डिया ऑफ औरंगजेब, कलकत्ता, 1901.

128. सरकार, जदुनाथ : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, 5 भाग, कलकत्ता, भाग 1–2, 1973.
भाग 3–4, 1972, भाग–5, 1974.

129. सरकार, जदुनाथ : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, कलकत्ता, 1962.

130. सरकार, जदुनाथ : मासीर–ए–आलमगीर, (द्वारा अनुवादित), कलकत्ता, 1947.

131. सरकार, जयरट : आइने—अकबरी, भाग— 2—3, कलकत्ता, 1949.

132. सिन्हा, नरेन्द्र कृष्ण : राइज़ ऑफ दि सिक्ख पॉवर, कलकत्ता, 1960.

133. सीतल, सोहनसिंह : प्रोफेट ऑफ मेन गुरूगोविन्दसिंह, लुधियाना, 1968.

134. सुन्दरसिंह : दि बेटिल्स ऑफ गुरूगोविन्द सिंह, अमृतसर, 1933.

135. सूरी, विद्यासागर : सम ओरिजनल सोर्सेज, ऑफ पंजाब हिस्ट्री, (द्वारा अनुवादित) ।

136. सैयद, ए0जे0 : औरंगजेब इन मुन्तख्ब—उल—लुबाब, बम्बई, 1977.

137. सोहन सिंह : बन्दा दि ब्रेव, लाहौर, 1915.

138. हरबन्स सिंह : दि हेरिटेज ऑफ दि सिक्ख्स, लन्दन, 1964.

139. हरबंस सिंह : गुरू गोविन्द सिंह, चण्डीगढ़, 1966.

140. त्रिपाठी,आर0पी0 : सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, 1936.

141. त्रिलोचन सिंह : गुरू तेगबहादुर, देहली, 1967.

142. जनरल : दि पंजाब पास्ट एण्ड प्रिजेन्ट, (1967—1976), भाग— 1—10, पटियाला ।

(5) अप्रकाशित सामग्री :

1. गुरू कीआं साखीयां : अप्रकाशित खरड़ा

2. तारीख—ए—पंजाब : बूटे शाह हस्तलिखित खरड़ा ।

3. मालवा देस रटन की साखी पौधी : साखी नं0— 33

4. गुरू कीआं साखीयाँ : सरूप सिंह कोशिश ।

5. अखबारात–ए–दरबार–ए –मुअला, : 13 मई, सन् 1710 ई0

6. 25 सफर या 1723 ई0 में बादशाह मुहम्मद शाह के समय की फारसी में लिखी एक हस्तलिखित प्रति ।

7. केप्टन भागसिंह का लेख : बंगला देश में गुरूद्वारों की मुक्ति ।

8. डा0 जी0एस0 आनन्द का अप्रकाशित पी–एच0डी0 थीसिस– ''गुरू तेगबहादुर', आगरा विश्वविद्यालय ।

बहियाँ :

9. भाट बही सलौदा परगना जींद ।
10. भाट बही सलौदा परगना जींद खाता जलहाना बलौतों का ।
11. भाट बही मुल्तानी सिंधि ।
12. भाट बही तुमर बिजलौतों की ।
13. भाट बही पूरबी दक्खणी खाता जलहानों का ।
14. भाट बही मुल्तानी सिंधि खाता जलहाना बिजलोतों का ।
15. भाट बही जदूबंसिया खाता बड़तियाँ ।
16. पण्डित आत्माराम ज्योतिषी के सुपुत्र पण्डित नीलकण्ठ की बही पिहोवा शहर ।
17. पंडावरी महेशदत्त बेटा पण्डित ठाकुरदास कुरूक्षेत्र की भाट बही ।
18. अप्रकाशित हुक्मनामें ।
20. परम्परायें, कहानियाँ, अखबारें, रिसालें तथा अन्य सामग्री।

––00––